सिद्धयोग

संस्थापक : योगयोगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहनजी महाराज

श्री सिद्धगुफा प्रकाशन
सवॉई-283202 (आगरा) उ.प्र.

वर्ष : 43, अंक : 4
जुलाई – 2010

अमृत कण

बुद्धिर्यस्य बलतस्य निर्बुद्धेश्च कुतोबलम्।

(चाणक्य)

अर्थात् संसार में जिसके पास बुद्धि है वही बलवान है क्योंकि बुद्धि के बल पर ही मनुष्य, जड़-चेतन सभी पर शासन करता है।

◆ ◆ ◆

संस्कृतस्य हि दान्तस्य नियतस्य यतात्मनः।
प्राज्ञस्यानन्तरा सिद्धिरिहलोके परत्र च।।

(महाभारत)

अर्थात् जिसके वैदिक संस्कार विधिवत् सम्पन्न हुए हैं, जो नियमपूर्वक रहकर मन और इन्द्रियों पर विजय पा चुका है, उस विज्ञ पुरुष को इहलोक और परलोक में कहीं भी सिद्धि प्राप्त होते देर नहीं लगती।

◆ ◆ ◆

जीर्यन्ति जीर्यतः केशा दन्ता जीर्यन्ति जीर्यतः।
जी विताशा धनाशा च जीर्यतोऽपि न जीर्यति।।
अनन्तपारा दुष्पूरा तृष्णा दोषशतावहा।
अधर्म बहुला चैव तस्मातां परिवर्जयेत्।।

(पद्मपुराण)

जब मनुष्य का शरीर जीर्ण होता है, जब उसके बाल पक जाते हैं और दाँत भी टूट जाते हैं किंतु धन और जीवन की आशा बूढ़े होने पर भी जीर्ण नहीं होती वह सदा नयी ही बनी रहती है। तृष्णा का कहीं ओर-छोर नहीं है, उसका पेट भरना कठिन होता है। वह ढेरों दोषों को ढोये फिरती है। उसके द्वारा बहुत से अधर्म होते हैं; अतः तृष्णा का परित्याग कर दें।

◆ ◆ ◆

अहिंसा सत्यमक्रोधस्त्यागः शान्ति पैशुनम्।
दया भूतेष्व लोलुप्तवं मार्दवं ह्रीरचापलम्।।

(श्रीमद् भागवद् गीता)

मन, वाणी और शरीर से किसी भी प्रकार से किसी को कष्ट न देना, यथार्थ और प्रिय भाषण करना, अपने प्रति अपकार करने वाले पर भी क्रोध न करना, कर्तापन का अहंकार न करना, अन्तःकरण की उपरति अर्थात् चंचलता, आसक्ति, क्रूरता आदि दुराचारी गुणों का अभाव होना आदि अच्छी आचार संहिता के लक्षण है।

◆ ◆ ◆

सिद्धयोग

योग सिद्धान्तों का प्रतिपादक मासिक-पत्र

ध्यायं ध्यायं यदिह परमं ब्रह्म शुद्ध स्वभावम्
मर्त्योमृत्योर्मुख विवरतो, मुक्तिमाप्नोति सद्यः।
तत्प्राप्त्यर्थान् बहुतर विशदान् योगशास्त्रोपदेशान्
कल्याणानाम् भवतु महतां सिद्धये सिद्धयोगः।।

अर्थः— शुद्ध (निर्विकार) स्वभाव वाले परम ब्रह्म का ध्यान करते–करते मृत्यु के मुख में पड़ा हुआ मनुष्य शीघ्र ही मुक्ति को प्राप्त हो जाता है। उस मुक्ति की प्राप्ति के उपाय स्वरूप योग ध्यान शास्त्र के सिद्धान्तों की विस्तृत व्याख्या करने वाली "सिद्धयोग" नामक पत्रिका सत्पुरुषों के परम कल्याण की सिद्धि (प्राप्ति) में सक्षम व सहायक हो।

वर्ष: 43 अंक : 4

एकदन्तं चतुर्हस्तं पाशमङ्कुशधारिणम्।
रदं च वरदं हस्तैर्बिभ्राणं मूषकध्वजम्।।
रक्तं लम्बोदरं शूर्पकर्णकं रक्तवाससम्।
रक्तगन्धानुलिप्ताङ्गं रक्तपुष्पैः सुपूजितम्।।
भक्तानुकम्पिनं देवं जगत्कारणमच्युतम्।
आविर्भूतं च सृष्टयादौ प्रकृतेः पुरुषात्परम्।।
एवं ध्यायति यो नित्यं स योगी योगिनां वरः।।

गणपतिदेव एकदन्त और चतुर्बाहु है। वे अपने चार हाथों में पाश, अंकुश, दन्त और वरमुद्रा धारण करते है। उनके ध्वज में मूषक का चिन्ह है। वे रक्तवर्ण, लम्बोदर, शूर्पकर्ण तथा रक्तवस्त्रधारी है। रक्तचन्दन के द्वारा उनके अंग अनुलिप्त है। वे रक्तवर्ण के पुष्पों द्वारा पूजित है। सबकी कामना पूर्ण करने वाले, एकाक्षरबीज, जगत् के कारण, अच्युत तथा प्रकृति और पुरुष से परे विराजमान वे मुक्तिदाता सृष्टि के आदि में आविर्भूत हुए। इसका जो इस प्रकार नित्य ध्यान करता है, वह योगी योगियों में श्रेष्ठ है।

जुलाई, 2010

श्री सिद्धगुफा योग प्रशिक्षण केन्द्र
सवाई (एत्मादपुर) आगरा

SIDDHYOG

HINDI MONTHLY

Propagating Yoga & Spiritual values

संस्थापक :

योग–योगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहन जी महाराज

सम्पादक :

आचार्य (डा.) दासलाल ब्रह्मचारी

संयुक्त सम्पादक

डॉ. विजय सिंह

प्रबन्ध सम्पादक :

समस्त योग प्रचार मण्डलों के अध्यक्ष एवं गुरु भाई–बहिन

अनुक्रमणिका

1.	विशेष लेख – योगयोगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहनजी महाराज	3
2.	सम्पादकीय	18
3.	नास्ति तत्वं गुरो : परम –अवनीश भटनागर	21
4.	अष्टाङ्ग योग –प्रो. ऋषिराम शर्मा	23
5.	परम पूज्य ब्रह्मचारी श्री गोपालानन्द जी महाराज के ध्यानानुभव	26
6.	छात्र जीवन में योग की आवश्यकता –अनिल दुबे	30
7.	श्री गीतामृत पदावली –डॉ. रुद्रदत्त चतुर्वेदी	33
8.	नारी को योग की आवश्यकता –श्रीमती सरिता भारद्वाज	36
9.	सर्व समर्थ मेरे सद्गुरुदेव –राजेश कुमार सिंह	38

एक प्रति	: रु. 11.00
वार्षिक शुल्क	: रु. 140.00
द्विवार्षिक	: रु. 250.00
आजीवन (10 वर्षीय केवल)	: रु. 850.00

विशेष लेख

संयम और सिद्धियाँ

योग–योगेश्वर अनन्त श्री चन्द्रमोहन जी महाराज

सिद्धियों का आधार संयम है। संयम सिद्ध हो जाने पर ही योगी को सकल सिद्धियाँ उपलब्ध होती हैं। योग–प्रदर्शन के विभूति–पाद में भगवान पतंजलिदेव ने जिन–जिन सिद्धियों का जिक्र किया है वे सब संयम पर आधारित हैं। इससे पहले कि मैं सिद्धियों का वर्णन करूँ 'संयम' का अर्थ समझा देना परमावश्यक है। संयम की परिभाषा लिखते हुए भगवान पतंजलिदेव अपने एक छोटे से सूत्र में लिखते हैं:–

त्रयमेकत्र संयमः।

इस सूत्र पर श्री व्यासभाष्य की पंक्तियाँ निम्नांकित हैं:–

एकविषयाणि त्रीणि साधनानि संयम इत्युच्यते तदस्य त्रयस्य तान्त्रिकी ...रेभाषा संयम इति।

अर्थात्–धारणा, ध्यान एवं समाधि तीनों साधनों का एक लक्ष्य में लक्षित हो जाना ही संयम की सही परिभाषा है। इस बात को इस प्रकार से समझ लेना चाहिए। जैसे एक नया साधक ज्यों ही योगाभ्यास करना आरम्भ करता है, उसके सामने पहला लक्ष्य रहता है–धारणा को सिद्ध करना। वह धारणा को सिद्ध करने के लिए जब कोई अभ्यास आरम्भ करता है तो धारणा के लक्षीभूत किसी देश को अपने चिन्तन का आधार बनाता है। धारणा का लक्षण बतलाते हुए भगवान पतंजलिदेव ने लिखा है:–

देशबन्धश्चित्तस्य धारणा।

अर्थात्–किसी एक लक्ष्य में चित्त को इकट्ठा करना धारणा कहलाती है। इस सूत्र पर श्री व्यासदेव जी धारणा की परिभाषा समझाते हुए धारणा स्थलों का निर्देश इस प्रकार करते हैं–

नाभिचक्रे, हृदयपुण्डरीके, मूर्ध्नि ज्योतिषि, नासिकाग्रे, जिह्वाग्र इत्येवमादिषु देशेषु, बाह्ये वा विषये, चित्तस्य वृत्तिमात्रेण बन्ध इति धारणा।

अर्थात्–जिस समय साधक धारणा का अभ्यास करना आरम्भ करे तब वह मन के चिन्तन से ही धारणा के लक्ष्य को केन्द्रित करे। योगाचार्यों के अनुभूत स्थान नाभिचक्र, हृदयकमल, मूर्धाज्योति, नासिकाग्र, जिह्वाग्र, जिह्वामूल आदि–आदि हैं। जिस ... कोई भी

योगी साधक उपरोक्त धारणा–स्थलों को लक्षित केन्द्र बनायेगा तो वहाँ का सब दृश्य धीरे–धीरे उसके सामने आने लगेगा एवं उसका सर्वार्थक मन धारणा स्थल में एकाग्र हो जायेगा। धारणा का फल है–मन की ताकत का बढ़ जाना। भगवान पतंजलिदेव स्पष्ट शब्दों में लिखते हैं:–

धारणासु योग्यता मनसः।

धारणा मन को ध्यान करने लायक बल दे देती है किन्तु अभ्यासी साधक को धारणा के विषय में सफलता लाभ करने के लिए यह याद रखना चाहिए कि वह धैर्य को न छोड़े। यह इस प्रकार का कोर्स है कि यदि साधक इसको परिपक्व कर डालेगा तो आगे की भूमिकाओं में उसको कुछ भी प्रयास करने की आवश्यकता नहीं रहेगी। भगवान पतंजलिदेव उसके बारे में निर्देश करते हैं कि–

स तु दीर्घकाल नैरन्तर्यस त्कारासेवितो दृढ़भूमिः।

एक अभ्यास को परिपक्व करने के लिए उसको लम्बे समय तक करते ही रहना चाहिए ताकि–वह परिपक्वता पा जाये तथा यह भी परमावश्यक है कि उस अभ्यास में साधक की परिपक्व निष्ठा हो अर्थात् वह एकमात्र उस साधक को अपना उत्कृष्ट लक्ष्य बनाये। साधन के प्रति साधक के मन में बुद्धि होनी चाहिए तथा वह जिस समय अभ्यास आरम्भ करे उसको लगातार आदरपूर्वक लम्बे समय तक करता चला जाये। ऐसा करने पर ही वह ध्यान–धारणा के परिणाम को समझ सकेगा। साधक ज्यों–ज्यों धारणा के अभ्यास को परिपक्व बनाता चला जायेगा त्यों–त्यों वह धारणा ही ध्यान के रूप में बदलती चली जायेगी। धारणा का अभ्यास इतना परिपक्व हो जायेगा कि चिन्तन मात्र से ही मन धारणा में अपने आप केन्द्रित होने लगेगा। यह अभ्यास ज्यों ही पूर्णता को प्राप्त हो जायेगा त्यों ही वह परिवर्तित धारणा ध्यान बन जायेगी। ध्यान का लक्षण बतलाते हुए योग–दर्शन में लिखा गया है:–

तत्र प्रत्यैकतानताध्यानम् ।।

अर्थात्–धारणा के लक्षीभूत विषय में तैलधारावत् मन का सतत् प्रवाहित होना ध्यान कहलाता है। अब पढ़िये श्री व्यासदेव की व्याख्या:–

तस्मिन्देशे ध्येयालम्बनस्य प्रत्ययस्यैकतानतासदृशः प्रवाहः प्रत्यान्तरेणापरामृष्टो ध्यानम्।।

अर्थात्–लक्षित विषय में मन का विघ्न बाधा रहित लगा रहना ही ध्यान कहलाता है। विशेषता इसमें यह होगी कि साधक धारणा काल में धारणा के विषय का चिन्तन मन की कल्पना से करता था किन्तु ध्यान में वही विषय रूहानी आँखों से प्रत्यक्षतवत् स्पष्ट दिखाई देने लगेगा। साधक अपनी बाह्य चेतना से बिल्कुल शून्य हो जायेगा और अन्तर्जगत में लीन होकर भीतरी दृश्यों को बराबर देखता रहेगा। उसका ध्यान जब परिपक्व हो जायेगा तब वह ध्यान ही अपने आप उस रूहानी गुरु–परमात्मा की कृपा से समाधि रूप में बदल जायेगा।

समाधि का अर्थ है:–

तदेवार्थमात्रनिर्भासं स्वरूप शून्यमिव समाधि:।

ध्यानमेव ध्येयाकारनिर्भासं प्रत्ययात्मकेन शून्यमिव यदा भवति ध्येयस्वभावावेशात्तदा समाधिरित्युच्यते।

अर्थात्–ध्यान ही ध्येय में परिवर्तित होकर समाधि का रूप धारण कर लेता है। इसमें कोई दूसरा प्रत्यय सामने नहीं आता। विशेषता केवलमात्र इतनी ही है कि ध्यान करने वाला साधक स्वयं ध्येयकार में बदल जाता है।

जैसे किसी साधक ने श्रीराम का ध्यान करना प्रारम्भ किया और वे ध्यान में दीखने लगे। कालान्तर में अभ्यास के बढ़ते–बढ़ते हुए समाधि की यह स्थिति इस प्रकार की सामने आ जायेगी कि साधक स्वयं को श्रीराम देखने लगेगा। वह अपने बाह्य बोध को बिल्कुल भूल जायेगा और अन्तर्जगत में अपने देवदत, हरिदत्त बाह्य नामों को भूलकर 'मैं राम हूँ' इसी का उसको बोध होगा। शनैः शनैः बढ़ते हुए समाधि की यह स्थिति आ जायेगी कि – श्रीराम की सकल सिद्धियाँ उसके आगे–पीछे घूमने लगेंगी और वह साधक समझने लगेगा कि–ये सिद्धियाँ किसी और की नहीं प्रत्युत मेरी अपनी ही है। श्रीराम का चिन्तन करने वाले भक्तजन उसे अपने चिन्तक दिखाई देने लगेंगे। यही समाधि की सिद्धि है। इसी की तान्त्रिक परिभाषा संयम कहलाती है। धारणा, ध्यान और समाधि से तीनों में साधक प्रत्यान्तरेण अपरामृष्ट होकर लक्ष्यीभूत विषय में ही स्थिर रहता है तो समझ लेना चाहिए कि–उसको संयम सिद्ध हो गया। यह संयम समाधि का ही प्रत्यान्तरेण अपरामृष्ट शुद्ध रूप है। जो साधक लगातार दो या तीन वर्ष तक संयम का उत्कृष्ट अभ्यास कर लेते हैं तो समझ लेना चाहिए कि – उन्होंने संयम पर जय प्राप्त कर ली। संयम पर जय प्राप्त कर लेने से समाधि प्रज्ञा स्वतः ही प्रगट हो जाती है अर्थात् उत्तरोत्तर समाधि प्रवाह स्वच्छ बहने लगता है। भगवान् पतंजलि देव लिखते हैं:–

तज्जयात् प्रज्ञालोकः।

अर्थात्–संयम सिद्ध हो जाने पर प्रज्ञालोक हो जाता है या बुद्धि–प्रकाश हो जाता है। पढ़िये श्री व्यासदेव जी की पंक्ति :–

तस्य संयमस्य जयात्समाधिप्रज्ञाया भवत्यालोकः यथा यथा संयम–स्थिरपदो भवति तथा तथा समाधि प्रज्ञा विशारदी भवति।

अर्थात्–संयम जय हो जाने पर समाधि प्रज्ञा का उत्कर्ण उत्तरोत्तर बढ़ता चला जाता है और संयम स्थिरपद अर्थात् पूर्णतया दृढ़ हो जाता है तथा स्थितिप्रवाह बिल्कुल निर्मल होता चला जाता है। अभ्यास के बल से जब साधक इस प्रकार की स्थिति को प्राप्त कर लेता है और पूर्णतया समझ लेता है कि मेरा संयम सिद्ध हो चुका है तब वह उपलब्ध स्थिति वाला योगी अन्याय भूमिकाओं के संयम का उपयोग करे। श्री पतंजलि देव लिखते हैं:–

तस्य भूमिषु विनियोगः।

इस सूत्र पर व्यासभाष्य पढ़िये:–

तस्य संयमस्य जितभूमेर्याऽनन्तराभूमि–स्तत्र विनियोगः, नह्यजिताधरभूमि–रन्तरभूमिंविलंघ्य प्रान्त भूमिषु संयमं लभते तदभावाच्च कुतस्तस्यप्रज्ञाऽऽलोकः, ईश्वरप्रसादाज्जितोत्तरभूमिकस्य च नाधरभूमिषु परचित्तज्ञानादिषु संयमोयुक्तः, कस्मादएतदर्थस्यान्यत एवावगतत्वाद् भूमेरस्यैयमनंतराभूमिरित्यत्र योगैवोपाध्यायः कथमेवमुक्तम्–

योगेन योगो ज्ञातव्यो योगो योगात्प्रवर्तते।
योऽप्रमत्तस्तु योगेन स योगे रमते चिरम्।।

अर्थात् : पहले–पहल योगी अपने अभ्यास बल से संयम को सिद्ध करता है तो उसके मन का लगाव उन पहली भूमिकाओं में अधिक रहता है जिनमें अभी तक वह संयम करता रहा है। क्योंकि पहली भूमिकाओं में जय प्राप्त किए बिना ज्ञानविषयक बुद्धि का प्रकाश नहीं हो पाता। कदाचित साधक ईश्वर कृपा से उत्तर भूमियों में जय प्राप्त कर ले तो उसके बाद में निम्न श्रेणी की भूमिकाओं में उसको संयम करने की आवश्यकता नहीं रहती। क्योंकि अधः भूमियों जो परिचित ज्ञानादि की हैं वह तो साधक को ईश्वर कृपा से उत्तर भूमियों में जय प्राप्त कर लेने पर स्वतः ही सिद्ध हो जाती हैं। साधक संयम कहाँ करेगा इसे सोचने की उसे आवश्यकता ही नहीं है क्यों कि साधक के उस अभ्यास में उत्तर भूमियाँ अपने आप ही प्रकट होती रहेंगी। क्योंकि–योग–शास्त्र का ऐसा नियम है–'योगिनो योग एव उपाध्याय'। अर्थात् योगाभ्यासी के लिए योग ही उसका गुरु बन जाता है। साधक का केवलमात्र इतना कर्तव्य रह जाता है कि वह अपने अभ्यास को बाकायदा बढ़ाता चला जाये। वह ज्यों–ज्यों अभ्यास बढ़ाता जायेगा त्यों–त्यों उस परम गुरु की कृपा से उत्तर भूमिकायें उसके सामने प्रकट होती जायेंगी क्योंकि योगाचार्यों का मत है कि योग से योग को जाने, योग से ही योग बढ़ता है। जो प्रमाद रहित होकर योगाभ्यास करते रहते हैं वे अवश्य ही समाधि–पद को प्राप्त कर लेते हैं। भगवान पतंजलिदेव ने अष्टाङ्ग योग का वर्णन किया है यथा:–

यम–नियमासन प्राणायाम प्रत्याहार धारणा ध्यान समाधयोऽष्टाङ्गानि।

अर्थात्–योग के इन आठ अंगों में यम–नियम–आसन–प्राणायाम–प्रत्याहार, इन पाँचों की अपेक्षा धारणा–ध्यान–समाधि अंतरंग अंग हैं; किन्तु निर्बीज समाधि की अपेक्षा बहिरंग ही हैं। साधक ज्यों–ज्यों निरन्तर अभ्यास करता है त्यों–त्यों उसके चित्त में विभिन्न प्रकार के परिणाम होते रहते हैं। जिस समय योगी साधक अभ्यास आरम्भ करता है तो उसका चित्त जो अभी तक सर्वार्थता में लगा था वह एकाग्रता के रूप में बदल जाता है। यही शान्तोदित प्रत्यय कहलाते हैं। इसी प्रकार से साधक का चित्त ज्योंही एकाग्रता परिणाम को खोकर समाधि–परिणाम में परिवर्तित होता है तो वह योगी के चित्त का समाधि–परिणाम कहलाता है। इस प्रकार परिणित होता हुआ चित्त समाधि की सब भूमिकाओं में धर्मी बन करके परिणित में

आता रहता है। धर्मी का लक्षण भगवान् पतंजलिदेव ने अपने योग–दर्शन में इस प्रकार कहा है:–

शान्तोदिता व्यपदेश्य धर्मानुपाती धर्मी।

अर्थात्–धर्मी वह कहलाता है जो भूत–भविष्य–वर्तमान में बराबर अनुगमन करता रहे। इस बात को ऐसे समझना चाहिए जैसे घट–पट आदि परिणामों के अन्दर धर्मी मिट्टी कायम रहती ही चली जाती है। उदाहरणार्थ इस प्रकार समझिये–कुम्हार ने खोदकर कुछ मिट्टी ली और पानी मिलाकर उसका गोला तैयार कर लिया। अब मिट्टी यहाँ पर मिट्टी धर्मी है और वह मिट्टी गोला–रूप–धर्म–परिणाम में बदल गई। उस गोले को कुम्हार ने एक मटके के रूप में बदल दिया। अब वह मिट्टी जो गोला रूप धर्म–परिणाम में परिवर्तित हुई थी, अब मटके के रूप में बदल गई। यह उसी धर्मी मिट्टी का मटका रूप धर्म–परिणाम है। मटका पका लिया गया फिर उसको तोड़–फोड़कर ठिक्कड़ बना लिया गया। मिट्टी घड़े में मौजूद थी और अब ठिक्करों में भी, केवल उसके परिणामान्तर होते रहे। जब मिट्टी मटके के रूप में आई थी तब उसका नया मटका, पुराना मटका, कहकर अवस्था परिणाम था। लम्बे गले का मटका आदि–आदि लक्षण परिणाम था। इन तीनों परिणामों के अन्दर मिट्टी धर्मी रूप में सभी जगह कायम रही उसमें कोई अन्तर नहीं आया चाहे वह मटका बनी, कटोरा बनी, ठीकर बनी और ठीकर टूट जाने के बाद मिट्टी का चूर्ण बन गया। मिट्टी वही मिट्टी रूप में आ गई। इसी प्रकार हमारे चित्त में एकाग्रता परिणाम, समाधि परिणाम एवं निरोध आदि परिणाम हुए, धर्मी चित्त अपने विभिन्न परिणामों में अन्यान्य एकाग्रता आदि धर्मो के अन्दर परिवर्तित होता रहा। केवल मात्र निर्बीज समाधि के अन्दर जाकर जड़–चेतन की गाँठ टूट जाने पर आत्मा केवली भाव को प्राप्त हो जायेगी और उससे अलग होकर उसका गुणों में अवस्थान हो जायेगा। चित्त का एक क्रम से दूसरे क्रम में बदल जाना ही परिणामान्तर का हेतु है। ज्यों–ज्यों साधक अपने अभ्यास को बढ़ाकर विवेक–ज्ञान को निर्मल कर लेता है तब उसके चित्त में सभी कुछ ग्रहण कर लेने की योग्यता बढ़ती जाती है। वह जहाँ–जहाँ अपने चित्त को संयमित करता है वहाँ–वहाँ का ज्ञान तत्काल प्राप्त कर सकता है। अब योगी की इच्छा है कि वह अपने सधे हुए चित्त को कहाँ–कहाँ लगायेगा, उसको प्रकृति का कितना अध्ययन करना है, कितनी प्रकार की सिद्धियों को अपार्जित करना है, आदि–आदि? जिस प्रकार से एक पढ़ने वाले विद्यार्थी ने पढ़ते–पढ़ते अपने बुद्धिबल को इतना बढ़ा लिया है कि वह जिस विषय को पढ़ना आरम्भ करता है उसको उसकी बुद्धि तत्काल ग्रहण कर लेती है और वह थोड़े से समय में उस विषय का विद्वान भी बन जाता है। यदि वही विषय किसी अनपढ़ गंवार के सामने कहा जाये तो उसकी बुद्धि उस विषय को बिलकुल भी ग्रहण न कर पायेगी और न तो वह यह समझ पायेगा कि उसको क्या कहा जा रहा है? यह रही बाह्य कोर्स के अध्ययन की बात। किन्तु योगी भीतर की पढ़ाई पढ़ता है। उसको भीतरी विज्ञान का अध्ययन करके अपनी रूहानी शक्तियों को प्राप्त

करना है और अपने आपको पूर्ण युक्त योगी बनाना है। युक्त योगी का लक्षण श्रीमद्भगवद्गीता में अखिलात्मा श्रीकृष्ण ने इस प्रकार कहा है:-

ज्ञानविज्ञानतृप्तात्मा कूटस्थो विजितेन्द्रियः।
युक्त इत्युच्यते योगी समलोष्टाश्मकांचनः।।

अर्थात्-युक्त योगी वे हैं जो अपने संयम के आधार पर प्रकृति के सारे विश्लेषणों को समझकर, उन पर विजय प्राप्त करके ज्ञान-तृप्तात्मा बन जाते हैं। ऐसे योगी पंचमहाभूतों पर विजय प्राप्त करके भूतजयी हो जाते हैं और पंचमहाभूतों पर अपना पूर्ण अधिकार रखते हैं। उनके शरीर पर पृथ्वी-जल-अग्नि-वायु और आकाश अपना किसी भी प्रकार का कोई प्रभाव नहीं डालते। प्रत्युत योगी अपने मनोबल से भूतजयी होकर अपने शरीर में जैसा भी परिणाम पैदा करना चाहे कर लेता है। यह तो रही प्रकृति पर अधिकार की बात। इसके अतिरिक्त अपने विकास की ओर बढ़ता हुआ योगी शीघ्रातिशीघ्र आत्मबल से पूर्ण होकर प्रचण्ड भास्कर की तरह चमकने लगता है। अब उसका आत्म विज्ञान पर पूरा अधिकार है। वह विचाररहित स्थिति में पहुँच गया है, इन्द्रियाँ पूरी-पूरी नियन्त्रण में हैं। ऐसे योगी की दृष्टि में सोना-लोहा-पत्थर सब समान हैं। वह किसी के किसी प्रकार के प्रलोभन में नहीं आता क्योंकि वह आत्मिक कोष को पूर्णरूपेण प्राप्त कर चुका है। उसके लिए अब कुछ भी प्राप्तव्य नहीं है तथा वह सब प्रकार से परिपूर्ण युक्त योगी है। प्रकृति के जिस प्रकार के ऐश्वर्य को वह प्राप्त करना चाहे क्षणमात्र के चिन्तन से ही प्राप्त कर सकता है। योग दर्शन के विभूति पाद में योगियों को प्राप्त कुछ विभूतियों का वर्णन किया गया है।

मनुष्य को भूत-भविष्य का ज्ञान किस प्रकार से प्राप्त होता है? इस बात को समझने के लिए भगवान पतंजलिदेव ने अपने योग दर्शन के विभूतिपाद में एक सूत्र का उल्लेख किया है, वह यह है -

परिणामत्रयसंयमादतीतानागत ज्ञानम्।

इस सूत्र पर व्यास भाष्य की पंक्तियाँ इस प्रकार हैं -

धर्मलक्षणावस्था परिणामेषु संयमाद् योगिनां भवत्यतीतानागतज्ञानम्। धारणा ध्यान समाधि त्रयमेकत्र संयम उक्तः। तेन परिणामत्रयसाक्षात्क्रियमाणमतीतानागत ज्ञानं तेषु सम्पादयति।

अर्थात् - धर्म, लक्षण, अवस्था इन तीन परिणामों में संयम करने से अतीत एवं अनागत ज्ञान योगाभ्यासी साधक को होता है। यहाँ पर भगवान पतंजलिदेव ने अपने अतीत अनागत का नाम इसलिये लिया क्योंकि वर्तमान काल का ज्ञान तो प्रत्येक साधक को प्रतिक्षण होता ही रहता है। संयम के आधार पर ज्ञान का विषय तो अतीत अर्थात् गुजरा हुआ और अनागत जो भविष्य में आने वाला है, ही है। गुजरे हुए समय के अन्दर हम किन-किन योनियों में से निकले, क्या दुःख और सुख भोगे, कौन-कौन मित्र प्यारे और कुटुम्बी जन मिले? यह

सभी कुछ विषय चित्त के अन्दर वर्तमान रहने वाले धर्म, लक्षण एवं अवस्था परिणामों से जाने जा सकते हैं। हम यह बात बता चुके हैं कि धारणा, ध्यान व समाधि जब तीनों ही अपने एक विषय में लब्धस्थित होते हैं, बस उसी समाधि का नाम संयम बन जाता है। चित्त के अन्दर जो संस्कार घूमा करते हैं, वे संस्कार मनुष्य की आकृति पर भी टपकने लगते हैं। किसके चित्त में क्या भाव हैं? इसको हर व्यक्ति नहीं जान सकता और न ही समझ सकता है, फिर भी चित्त के अन्दर घूमने वाले भाव मनुष्य की आकृति में झलकने अवश्य लगते हैं। नीतिशास्त्र का वचन है –

आकारैरिंगतैर्गत्या चेष्टया भाषणेन च।
नेत्र वक्त्रविकारैश्च ज्ञायते अन्तर्गतं मनः।।

अर्थात् – मनुष्य की आकृति से, इशारों से, चलने–फिरने से, हरकतों से, बोलने से, आँख–मुँह के विकारों से भी मनुष्य के अन्दर के भावों का हर व्यक्ति को ज्ञान हो जाता है। यदि मनुष्य अपने मन में किसी के प्रति क्रुद्ध है तो उसका क्रोधाभिनय उसके मस्तिष्क पर झलकने लगता है। यह तो हुई लौकिक बात। मनोविज्ञान के विद्यार्थी ऐसे हाव–भाव देखकर पहचान जाया करते हैं और वे कहने लगते हैं–आज आप उदास हैं, पता नहीं आपके मन में क्या भाव घर कर गये हैं? इसी प्रकार यदि कोई व्यक्ति उल्लसित दिखाई देता है तो उसके अन्तर्गत हर्ष का ज्ञान हर व्यक्ति को हो जाता है और लोग पूछा करते हैं कि–आज तो आप बहुत प्रसन्न मालूम पड़ते हैं, क्या मिल गया है? हमें भी बताओ। जब इस प्रकार से चलने–फिरने की हरकतों से मनुष्य के मन में छुपे भावों का पता लग जाता है तो फिर एक योगी को जो अपने चित्त के सूक्ष्म संस्कारों के अन्दर संयम करेगा और जिन संस्कारों का उपभोग उसका चित्त अभी तक कर रहा है उसके फलस्वरूप भूतकाल में गुजरे हुये संस्कार अच्छे हैं या बुरे जैसे भी हैं उसके सामने आने लगते हैं और वह यह जान जाता है कि–हमारा यह चित्त अथवा अन्य सभी औरों का चित्त किन–किन स्थितियों में से निकलकर आया है इस समय हम किस प्रकार के संस्कारों का उपभोग कर रहे हैं और यह संस्कार हम कब तक भोग पायेंगे। ये सब बातें चित्त की भावी परिणतियों को देखता हुआ योगी चित्त के अन्दर होने वाले अनागत ज्ञान को भली प्रकार से समझ जाता है, लेकिन तब ही समझ पाता है जब वह चित्त के अन्दर गुजरने वाले धर्म, लक्षण एवं अवस्था आदि परिणामों को भली प्रकार जान ले।

सभी प्राणियों की भाषाओं का ज्ञान

योगी का संयम ज्यों–ज्यों अभ्यास के बल से उत्तरोत्तर उत्कृष्ट होता चला जाता है त्यों–त्यों वह जिस–जिस विषय को अपने संयम का आधार बनाता है त्यों–त्यों संयम पर आधारित विषयों का ज्ञान उसको बिल्कुल स्पष्ट होने लगता है। भगवान पतंजलिदेव अपने एक सूत्र में सभी प्राणियों की बोली का ज्ञान कराने वाले विषय को इस प्रकार लिखते हैं:–

शब्दार्थप्रत्ययानामितरेतराध्यासात्संङ्करस्तत्प्रविभाग संयमात्सर्वभूतरूपज्ञानम्।।

अर्थात्–शब्द, अर्थ और ज्ञान ये तीनों मिले हुए रहते हैं। इसी कारण से मनुष्य किसी भाषा का ज्ञान नहीं कर पाता। शब्द, अर्थ और ज्ञान इन तीनों विभागों में संयम करने से योगी को हर प्राणी की बोली का ज्ञान हो जाया करता है। जैसे–किसी व्यक्ति ने कहा–'गौ' इस शब्द के अन्दर तीनों ज्ञान छुपे हुए हैं। 'गौ' एक शब्द भी है और लम्बे गले वाली पशु जाति 'गौ' नाम वाले पशु को 'गौ' कहते हैं, ऐसा ज्ञान मनुष्य के मन में रहा करता है। यह उस 'गौ' शब्द का ज्ञान है अर्थात् 'गौ' शब्द का उच्चारण करते ही मनुष्य की आँखों के सामने गौ के स्वरूप का नक्शा बनकर खड़ा हो जाता है। यही 'गौ' शब्द का ज्ञान है। इसके अतिरिक्त गौ सत्ता में विद्यमान चार पाँवों वाला पशु ही "गौ' शब्द का अर्थभूत पशु है। ये हैं एक 'गौ' शब्द के न्यारे–न्यारे भाग। जिस समय योगी संयम को सिद्ध करके शब्द, अर्थ और ज्ञान इन तीनों विभागों में मन को अलहदा–अलहदा संयमित करता है तो उसको प्राणीमात्र की भाषा का ज्ञान अनायास होने लगता है।

इस विषय को इस प्रकार समझ लीजिये। योगी का चित्त जिस समय संयमित होने लगता है उस समय वह रज से निकलकर तैजस भावों वाला होता है। तैजस भावों वाला चित्त जिस समय जिस विषय को अपने चिन्तन का आधार बनाता है तो वह विषय चिन्तन–मात्र से ही उसके सामने स्पष्ट होने लगता है।

भगवान पतंजलिदेव ने 'त्रयमेकत्र संयमः' कहकर के जहाँ संयम की परिभाषा लिखी है वहाँ किन–किन भूमिकाओं में योगी को संयम करना चाहिये इस विषय का भी स्पष्टीकरण किया है। व्यास भाष्य में यह बिल्कुल स्पष्ट लिखा है:–

ईश्वरप्रसादाज्जितोत्तर भूमिकस्य च नाधर भूमिषु परचित्तज्ञानादिषु संयमः युक्तः, कस्माद्? तदर्थस्यान्यत एवापवर्गत्वाद् भूमेरस्यैयमनन्तरा भूमिरित्यत्र योग एवोपाध्यायः।

अर्थात्–परम गुरु ईश्वर की कृपा से जो लोग उत्तर भूमियों के संयमित विषय को जान चुके हैं उनको निम्न श्रेणी की भूमिका का, परचित ज्ञानिकों में संयम की आवश्यकता नहीं रहती क्योंकि उन विषयों का ज्ञान तो साधारण रूप से चित्त के संयमित होने पर हो ही जाता है। इस प्रकार से संयमित चित्त वाला योगी जब कभी भी जिसके शब्द या अर्थ को अपने ज्ञान का विषय बनाता है उस समय हृदय में छिपे रहने वाले उस परम गुरु की कृपा से उसको उस विषय का ज्ञान अपने आप ही होने लगता है। जैसे–गौ ने अपनी ऊँची ध्वनि में 'माँ' इस शब्द का उच्चारण किया और किसी संयमित चित्त वाले योगी ने उस 'माँ–SS' शब्द को सुन लिया और वह शब्द ही उसके संयम का आधार बन गया। वह योगी यह जानना चाहता है कि इसने 'माँ–SS' शब्द क्यों कहा? इस स्थिति में योगी का बढ़ा हुआ अभ्यास ही उस 'माँ–SS' शब्द के अर्थ और ज्ञान को प्रकाशित करता है। साधारण रूप से 'माँ–SS' शब्द एक ही है किन्तु गौ ने उस 'माँ' शब्द का प्रयोग किन अर्थों को लेकर किया है उसके सूक्ष्म ज्ञान को योगी का

संयमित चित्त ही ठीक रूप से प्रकट करता है।

साधक की उस जिज्ञासा को वह आत्मिक गुरु, काल की अवच्छेदन गति से परे रहने वाला परतत्व, पूरी कर देता है। वह योगी यह जान लेता है कि–इस गौ ने यह 'माँ–ऽऽ' शब्द किन अर्थों में प्रयुक्त किया है। यह प्यासी है या अपने साथ रहने वाली किसी दूसरी गौ को याद कर रही है या भूखी है।

इस प्रकार के अर्थों को संयम के आधार पर योगी भली प्रकार से समझ लेता है। यही है शब्द, अर्थ, ज्ञान तथा प्राणीमात्र की बोली का ज्ञान प्राप्त करना। प्रथम तो योगी अपने संयमित चित्त के आधार पर ही जिस वस्तु के तत्व को जानना चाहता है उसको स्पष्ट रूप से जान ही लेता है। कदाचित् उसके ज्ञान में कोई व्यवधान है तो वह सर्वत्र व्यापक परमात्मा हर आत्मा में ओत–प्रोत रहने वाला उसे स्पष्ट ज्ञान करा देता है। इस विषय को मैं एक उदाहरण से स्पष्ट करा देना चाहता हूँ। मुझे यहाँ अपने एक गुरु भाई श्री गोपालानन्द जी की स्मृति आती है। उनका चित्त प्रतिक्षण संयमित रहता था। उन्होंने अपने संयम के अभ्यास को खूब परिपक्व कर लिया था। उनके मन में एक लगन पैदा हुई। उन्होंने यह जानना चाहा कि–परमात्मा ने सृष्टि की उत्पत्ति किस प्रकार की? यह सोचते–सोचते ही समाधिस्थ हो गये। उनका मन तेजस् धर्मों से युक्त था। संयमित मन होने पर उनकी आँखों के सामने एक दिव्य प्रकाश आया। उस दिव्य प्रकाश में से एक दिव्य आवाज सुनाई दी और वह आवाज ही वेद की ऋचा बनकर सामने प्रकट हो गई। ऋचा इस प्रकार थी:–

हिरण्यगर्भ समवर्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत् तदाधार पृथिवीं द्यामुतेमाम् तस्मै देवाय हविषा विधेम।

अर्थात्–अग्रे हिरण्यगर्भः समवर्तत। सः पृथ्वीं उत इमामावधार स हिरण्यगर्भः जातस्य भूतः एकः पतिरासीत्। कस्मै देवाय हविषा विधेमः।

सबसे पहले हिरण्यगर्भ पैदा हुए वे प्राणीमात्र के पति थे। हिरण्यगर्भ परमात्मा जो एक चमकते हुए गोले के रूप को धारण करके सामने प्रकट हुए थे उन्होंने पृथ्वी व आकाश को अपने अन्दर धारण किया हुआ था। वह परमात्मा सुखस्वरूप एवं प्राणिमात्र का पति है। उस कल्याणकारी देव के लिए हम अपने हृदयों में श्रद्धा धारण करें।

श्री ब्रह्मचारी गोपालानन्द जी ने जिस समय इस ऋचा को अपने कानों से सुना उसी समय उस अध्यात्म गुरु परमात्मा की कृपा से सृष्टि का उत्पत्ति–क्रम उनके सामने प्रकट हो गया एवं परमात्मा ने सृष्टि किस प्रकार बनाई इसको वे भली प्रकार जान गये। इस सूत्र पर श्री व्यासदेव जी ने जो अपना भाष्य लिखा है वह भी मैं सुविज्ञ पाठकों के ज्ञान के लिये देना ही उचित समझता हूँ:–

तत्र वाग्वर्णध्वेवार्थवती, श्रौत्रं च ध्वनि परिणाममात्र विषयम्, पदं पुनर्नादानुसंहार बुद्धिनिग्राह्यम् इति, वर्णा एकसमयासम्भवित्वात्परस्परनिरनुग्रहात्मानस्ते

पदमसंस्पृश्यानुपस्थाप्याविर्भूतास्तिरोभूताश्चेति प्रत्येकमपदस्वरूपा उच्यन्ते, वर्णः पुनरेकैकः पदात्मा सर्वाभिधान शक्ति प्रचितः सहकारिवर्णान्तर प्रतियोगित्वाद् वैश्वरूप्यमिवापन्नः पूर्वश्चोत्तरेणोत्तरश्च पूर्वेण विशेषेऽवस्थापित इत्येवं बहवो वर्णाः क्रमानुरोधिनोर्थसंकेतेनावच्छिन्ना इयन्त एते।

सर्वाभिधानशक्तिपरिवृत्ता गकारौकार विसर्जनीयाः सास्नाऽऽदिमन्तमर्थ द्योतयंतीति, तदेतेषामर्थसंकेतेनावच्छिन्नानामुपसंहृतध्वनिक्रमाणां य एको बुद्धिनिर्मासस्तत्पदं वाचकं वाच्यस्य संकेत्यते, तदेकं पदमेकबुद्धिविषय एकप्रयत्नाक्षिप्तम् अभागमक्रमवर्ण बौद्धमन्त्यवर्णप्रत्ययव्यापारोपस्थापितं परस्पर प्रतिपिपादयिषया वर्णैरवामिधीयमानैः श्रूयमाणश्च श्रोतृभिरनादिवाग् विद्यावासनानुविद्धया लोकबुद्धया सिद्धवत्संप्रतिपत्या प्रतीयते, तस्य संकेतबुद्धितः प्रविभागः एतावतामेवज्जातीयकोऽनुसंहार एकस्यार्थस्य वाचक इति, संकेतस्तु पदपदार्थयोरितरेतराध्यास रूपः स्मृत्यात्मको योऽयं शब्दः सोऽयमर्थः योऽर्थः स शब्द इत्येवमितरेतराध्यासरूपः संकेतो भवति, इत्येवमेते शब्दार्थप्रत्यया इतरेतराध्यासात्संकीर्णाः—गौरिति शब्दो, गौरित्यर्थो, गौरिति ज्ञानम्, य एषाम्प्रविभागज्ञः स सर्ववित्, सर्वपदेषु चास्ति वाक्यशक्तिर्वृक्ष इत्युक्तेऽस्तीति गम्यते, न सत्तां पदार्थो व्यभिचरतीति, तथा न ह्यसाधना क्रियाऽस्तीति, तथा च पचतीत्युक्ते सर्वकारकाणामाक्षेपो, नियमार्थोऽनुवादः कर्तृकर्मकरणानां चैत्राग्नितण्डुलानामिति, दृष्टं च वाक्यार्थे पदस्मरणं श्रोत्रियश्छन्दोऽधीते, जीवति प्राणान् धारयति, तत्र वाक्ये पदार्थाभिव्यक्तेः, ततः पदं प्रविभज्य व्याकरणीयं क्रियावाचकं कारकवाचकं वा, अन्यथा भवति, अश्वः अजापय इत्येवमादिषु नामाख्यातसारूप्यादनिर्ज्ञातं कथं क्रियायां।

कारके वा व्याक्रियेतेति तेषां शब्दार्थ प्रत्ययानां प्रविभागः, तद्यथा—श्वतते प्रासाद इति क्रियाऽर्थः, श्वेतः प्रसादः इति कारकार्थः, शब्दः क्रियाकारकात्मा तदर्थः प्रत्ययश्च कस्माद्? सोऽयमित्यभिसम्बन्धादेकाकार एव प्रत्ययः संकेत इति। यस्तु श्वेतोऽर्थः स शब्दप्रत्ययोरालम्बनीभूतः स हि स्वाभिरवस्थाभिर्विक्रियमाणो न शब्दसहगतो न बुद्धिसहगतः, एवं शब्द एवं प्रत्ययो नेतरेतरसहगत इति, अन्यथा शब्दोऽन्यथाऽर्थोऽन्यथा प्रत्यय इति प्रविभागः, एवं तत्प्रविभागसंयमाद् योगिनः सर्वभूतरुपज्ञानं सम्पद्यत इति।।

अर्थात्—शब्द, अर्थ और ज्ञान एक दूसरे के साथ मिले हुए होने के कारण उनका सम्मिश्रण है। इसलिए एक शब्द के उच्चारण करने से वह शब्द ध्वनि है। ध्वनि आकाश में से पैदा होकर आकाश में विलय हो जाती है किन्तु उस ध्वनि के अन्दर उसका एक ज्ञान भी छुपा हुआ है जिसका एक—दूसरे के साथ मिले हुए होने के कारण साधक को आभास नहीं होता कि जो शब्द उच्चारण किया गया है उसमें ज्ञान किस रूप में छुपा हुआ है। जब साधक उनके सम्मिरण को हटाकर 'इतरेतराध्यासात्संकरः' के भाव को छोड़कर शब्द, ज्ञान और अर्थ तीनों

को विभक्त करके शब्द को शब्द के रूप में और ज्ञान को ज्ञान के रूप में एवं अर्थ को अर्थ के रूप में न्यारा–न्यारा देखता है तो उस साधक के हृदय में न्यारा–न्यारा ही तत्तदर्थ ज्ञान का उदय होता है। इस प्रकार योगी जब इनके प्रविभागों में संयम करता है तो प्रयोग की हुई वाणी किस अर्थ को लक्ष्य करती है एवं प्रयोग करने वाले का मन किस ज्ञान को लक्ष्य करता है ऐसा करने पर साधक को प्राणीमात्र की बोलियों का ज्ञान हो जाया करता है।

पूर्व जाति का ज्ञान

''संस्कारसाक्षात्करणात्पूर्वजाति ज्ञानम्''

विभूतिपाद के इस सूत्र पर व्यास भाष्य की पंक्तियाँ इस प्रकार हैं:–

द्वये खल्वमी संस्काराः – स्मृतिक्लेश हेतवो वासनारूपाः, विपाकहेतवो धर्माधर्म रूपाः, ते पूर्वभवाभिसंस्कृताः, परिणामचेष्टानिरोध शक्ति जीवनधर्मवदपरिदृष्टाश्चित्तधर्माः, तेषु संयमः संस्कारसाक्षात्क्रियायै समर्थः, न च देशकालनिमित्तानुभवैर्विना तेषामस्ति साक्षात्करणं, तदित्थं संस्कारसाक्षात्करणात्पूर्वजातिज्ञानमुत्पद्यते योगिनः, परत्राप्येवमेव संस्कारसाक्षात्करणात्परजाति संवेदनम्।

अर्थात्–संस्कार दो प्रकार के माने गये हैं एक संस्कार वे हैं जो स्मृति एवं क्लेश आदि के कारण रहते हैं। स्मृतियों के कारण मैंने अमुक जन्म में अमुक जाति में जन्म लिया, अमुक–अमुक कार्य किये। ये संस्कार स्मृति–रूप संस्कार कहलाते हैं और इसी प्रकार से अविद्यादि क्लेशों के कारण बनते हैं। अर्थात् विषय वासना का रूप धर्माधर्म के कारण एवं सुख–दुःख आदि फलों के उत्पादक रहते हैं। ये संस्कार पूर्व जन्म के ही बने बनाये साधक के मन में प्रकट होते रहते हैं और उसे प्रेरणा देते रहते हैं। यही संस्कार चित्त के धर्म–परिणाम रूप क्रियावाले, निरोधरूप सामर्थ्यता रहित अर्थात् भोगरूप धर्म वाले देखे गये हैं। इन सब में संयम किया हुआ साक्षात्कार का कारण होता है। किन्तु देश, काल, निमित्त के अनुभव के बिना उनका साक्षात्कार नहीं किया जा सकता। जिस समय योगी देश, काल, निमित्तादि के साथ साक्षात्कार करने की चेष्टा करता है तो उसे अपनी पूर्व जाति का ज्ञान प्राप्त हो जाया करता है। इसी प्रकार से किसी दूसरे पुरुष के चित्त धर्मों में संयम करने से योगी को उसकी भी पूर्व जाति का ज्ञान प्राप्त हो जाया करता है।

इस बात को इस प्रकार से समझ लेना चाहिए–योगी अपने समाधि काल से पूर्व अपने मन में जब यह संस्कार बनाता है कि मैं अपने पूर्व जाति के ज्ञान को प्राप्त करूँ तो देशकाल, निमित्तादि के साथ–साथ अपने पूर्वानुभूत एवं भुक्त संस्कारों की ओर अपने संयमित मन को फेंकता है तो अपने आप ही उसके सामने उन संस्कारों का उद्‌बोधन होने लगता है क्योंकि उस समय उसका चित्त फोटो खींचने वाले एक कैमरे के रूप में होता है। वह किन–किन भोगों को भोगता हुआ आया है, क्या उसकी जाति थी, उस समय उसके अनुभूतार्थ क्या थे? यह सब

उसकी समाधि में उस परम गुरु ईश्वर के अनुग्रह से प्रकट होने लगता है और वह पूर्वजाति के ज्ञान को प्राप्त कर लेता है। इस विषय में योग–दर्शन के सूत्रों पर भाष्य लिखने वाले भगवान व्यासदेव जी ने एक उदाहरण दिया है जो इस प्रकार है–

अत्रेदमाख्यानं श्रूयते–भगवतो जैगीषव्यस्य संस्कारसाक्षात्करणाद् दशसु महासर्गेषु जन्मपरिणामक्रममनुपश्यतो विवेकजं ज्ञानं प्रादुरभवद् अथ भगवानावट्यस्तनुधरमुवाचदशसु महासर्गेषु भव्यत्वादनभिभूत बुद्धिसत्वेन त्वया नरकतिर्यग्गर्भसंभवं दुःखं संपश्यता देवमनुष्येषु पुनः पुनरूत्पद्यमानेन सुखदुःखयोः किमधिकमुपलब्धमिति? भगवन्तमावट्यं जैगीषव्य उवाच–दशसु महासर्गेषु भव्यत्वादनभिभूतसत्वेनमया नरकतिर्यग्भवं दुःखं संपश्यता देवमनुष्येषु पुनः पुनरूत्पद्यमानेन यत्किञ्चिदनुभूतं तत्सर्व दुःखमेव प्रत्यवैमि, भगवानावट्य उवाच–तदिदमायुष्मतः प्रधानवशित्वमनुत्तमं च सन्तोषसुखं किमिदमपि दुःखपक्षे निक्षिप्तमिति? भगवान् जैगीषव्य उवाच : विषय–सुखापेक्षयैवेदमनुत्तमं सन्तोषसुखमुक्तं, कैवल्यापेक्षया दुःखमेव बुद्धिसत्वस्थायं धर्मस्त्रिगुणः त्रिगुणश्च प्रत्ययो हेयपक्षे न्यस्त इति दुःखस्वरूपस्तृष्णातन्तुः तृष्णादुःखसन्तानापगमात्तु प्रसन्नमवार्य सर्वानुकूलं सुख– मिदमुक्तमिति।।

अर्थात्–इस विषय में पुराणों में यह कथा सुनने में आती है कि–परमैश्वर्य युक्त भगवान जैगीषव्य मुनि को संस्कार–साक्षात्कार करने से दश महासर्गों के अन्दर होने वाले जन्म–परिणाम कर्मों को देखते हुए विवेकज ज्ञान पैदा हुआ। परम ऋषि आवट्य ने उनसे प्रश्न किया–कि इन दश महासर्गों के अन्दर भोग–भोगते हुए प्रकाशबुद्धि के द्वारा आपने नरक एवं तिर्यक् योनियों में होने वाले गर्भ के दुःख का साक्षात्कार करते हुए बार–बार मनुष्य–देव योनियों में जाकर क्या किया, क्या प्राप्त किया? इसके उत्तर में भगवान आवट्य को जैगीषव्य मुनि ने उत्तर दिया–दश महासर्गों में भोग अवश्यम्भावी होने से मैंने अपनी प्रकाशमय बुद्धि के द्वारा नरक एवं तीर्यकादि योनियों में बार–बार जन्म के दुःखों को देखते हुए एवम् देव–मनुष्य योनियों में बार–बार उत्पन्न होते हुए जो कुछ भी अनुभव किया वह केवल दुःख ही दुःख था, यही मैं जानता हूँ। इस प्रश्न का उत्तर प्राप्त करने पर भगवान आवट्य मुनि ने पुनः प्रश्न किया–जीवन काल में इन्द्रियों को वश में करके जो सन्तोष सुख प्राप्त होता है क्या आपने उसको भी दुःखपक्ष में ही दिया है? इसके उत्तर में भगवान जैगीषव्य मुनि ने कहा विषय सुख की अपेक्षा सन्तोष सुख ही उत्तम है किन्तु कैवल्य सुख भी दुःख ही है। क्योंकि वह त्रिगुण वाली बुद्धि का धर्म है और त्रिगुणात्मक जो ज्ञान है वह त्यागने ही योग्य है, क्योंकि इसका कारण दुःख रूप तृष्णा का तार ही है। अतः सन्तोष सुख भी त्याज्य है। भगवान व्यासदेव जी ने जैगीषव्य मुनि के इस उदाहरण को देकर यह भली प्रकार समझा दिया कि–एक योगी अपने जन्म–जन्मान्तर का किस प्रकार से साक्षात्कार कर लिया करता है और वह किस प्रकार

संस्कारों का साक्षात्कार करके जन्म–मरण–जरा आदि दुःखों को जानकर अपने आपको मोहपाश से निकालकर मुक्ति की ओर बढ़ता है। जैगीषव्य मुनि का उदाहरण तो बहुत पुराने इतिहास की बात है। आज भी जो योगी अभ्यासपरायण हैं वह अपने जन्म–जन्मान्तरों के संस्कारों को देखकर दुःख–द्वन्द्व को त्याग कर मुक्ति का मार्ग अपनाते हैं। वे इस दुःख–द्वन्द्व से छूट जाया करते हैं। वैराग्य का यही एक उत्तम साधन है कि साधक अपने जन्म–जन्मान्तारों के संस्कारों को योगदृष्टि से देखे एवम् उन दुःख–द्वन्द्वों से अपने आपको छुड़ाकर कल्याण–मार्ग की ओर बढ़ायें। भाई–बन्धु, स्त्री–पुरुष आदि को एक मोह जनित जाल ही समझे।

योग विद्या ही एक ऐसी विद्या है जिसके द्वारा पूर्वजन्म के संस्कारों का साक्षात्कार किया जा सकता है। मैं अपने पाठकों के हितार्थ एक उदाहरण इस प्रकार लिख देना उचित समझता हूँ जिससे प्रत्येक साधक यह समझ जाये कि – पुराने जमाने के जैगीषव्य आदि ऋषि इतिहास के पुराने उदाहरण तो हैं ही किन्तु इस कलिकाल के जमाने में भी इस प्रकार के योगिराज महापुरूष हैं जिनकी करुण कृपा को पाकर मनुष्य भूत–भविष्य का ज्ञाता बन जाता है और वह अपने पूर्व जाति के संस्कारों का साक्षात्कार कर लेता है। इस विषय में मुझे अपने सद्गुरुदेव योगयोगेश्वर प्रभु श्री रामलाल जी की अनेकों अनुकम्पाओं का स्मरण हो रहा है।

श्री ब्रह्मचारी गोपालानन्द जी का एक उदाहरण

एक समय मेरे गुरुभाई श्री गोपालानन्दजी महाराज अपने योग साधन आश्रम ऋषीकेश के कुँए पर जल खींच रहे थे। अचानक उनके हाथ से कुँए पर लगे हुए चरखी की खूँटी छूट गई एवं उसमें लगी हुई कील से उनका हाथ काफी कट गया। उनके फटे हुए हाथ को देखकर वहाँ पर लोगों ने काफी आश्चर्य माना कि–ऐसा क्यों हुआ? श्री आनन्दकन्द प्रभु जी की महती कृपा से जितने भी वहाँ गुरु–भाई–बहिन थे वे सब अच्छे ध्यान–योग के अभ्यासी थे। उन्होंने श्री प्रभु जी के चरणारबिन्दों में प्रश्न किया कि–हे प्रभो! भाई ब्रह्मचारी श्री गोपालानन्द उत्कृष्ट ध्यानी हैं और विवेकख्याति की ओर तीव्रतम गति से बढ़े रहे हैं और फिर इतनी उत्कृष्ट स्थिति में भी यह घोर दण्ड क्यों मिला? कृपा कर बतलाइये। श्री प्रभु जी ने उत्तर दिया–भाई! हम क्या बतलायें? तुम सब ऊँचे–ऊँचे ध्यानयोग के अभ्यासी हो, अभ्यास में बैठकर इन संस्कारों का साक्षात्कार करो, पूर्व जाति का ज्ञान प्राप्त करो और देखो उस जन्म में इसके संस्कार क्या थे और कौन से कठिन कर्म–विपाक के कारण इसे दण्ड मिला है? श्री प्रभु जी की आज्ञानुसार वहाँ पर उपस्थित सभी ध्यानी ध्यानाभ्यास में बैठ गये और ब्रह्मचारी श्री गोपालानन्द जी की पूर्व जन्म की जाति की छानबीन करने लगे। शनैः–शनैः उन लोगों ने जाना कि ब्रह्मचारी गोपालानन्द जी इस जन्म से पहले जन्म में एक कर्मनिष्ठ ब्राह्मण थे और मथुरा में गौ घाट पर रहते थे। उनकी स्त्री रूपवती एवं गुणवती थी। उनके मन में प्रतिक्षण यह भ्रान्ति रहती थी कि–यह अपने रूप एवं यौवन के मद में कहीं कुमार्गगामिनी न हो जाये। वे अपने

यजमानों के घर कथाएं कहने के लिए जाया करते थे। एक दिन जब कहीं सत्यनारायण की कथा कहने को गये तो अपनी पत्नी को समझा गये कि–तुम गऊ को कुट्टी काटकर चारा डाल देना जिससे गऊ भूखी न रहे; किन्तु वह स्त्री गृहकार्यों की व्यस्तता के कारण गऊ को कुट्टी काटकर चारा न डाल सकी। परिणामस्वरूप जिस समय ये लौटकर घर आये तो अपनी स्त्री से पूछा कि–क्या तुमने अब तक कुट्टी काट करके गऊ को चारा नहीं डाला? तो उसने उत्तर दिया–स्वामिन! मैं घर के कार्यों में व्यस्त थी अब आपकी आज्ञानुसार अभी कुट्टी काटकर गऊ को चारा डाल देती हूँ, किन्तु विप्रदेव के मन में बड़ी शंकाएं थीं। वे अपनी शीलवती पत्नी को व्यभिचारिणी समझते थे। यथार्थ में वह वैसी नहीं थी किन्तु उन्होंने क्रोधवश होकर कहा–तुमने गऊ को कुट्टी काटकर चारा नहीं खिलाया तो क्यों न मैं तुम्हारी ही ऐसी दशा कर दूँ कि–तुम कभी भी कुट्टी न काट सको। यह कहकर उन्होंने अपनी स्त्री के हाथ को गंडासे से काट दिया और वह हाथ कुँए में गिर गया। परिणामस्वरूप वह तड़प–तड़प कर मर गई।

उसी पापकृत्य के फलस्वरूप आज ब्रह्मचारी जी का हाथ कुँए में गिरना था और उनकी मृत्यु होनी थी किन्तु वे विवेकख्याति की ओर हैं, इसलिए उनके हाथ में केवल चोट आ गई है। कुछ दिन कष्ट रहेगा और फिर ठीक हो जायेगा। हुआ भी वैसा ही। हमारे गुरुभाईयों ने मथुरा में जाकर वहाँ ब्रह्मचारी गोपालानन्द जी के पूर्व जन्म के स्थान को ढूँढा। गऊघाट के वासी लोगों ने बतलाया कि–हाँ! उनके मुहल्ले में रामनारायण पाण्डेय नामक कोई पण्डित रहते थे और उन्होंने अपनी स्त्री का हाथ काट दिया था जिसके फलस्वरूप उसकी मृत्यु हो गई। किन्तु बात बहुत पुरानी है, उनका वह मकान बिक चुका है। उनकी स्मृति का अब कोई चिन्ह अवशेष नहीं है। यह था योग के द्वारा संस्कार साक्षात्कार करके पूर्व जाति का ज्ञान प्राप्त करना, जिस प्रकार मनुष्य संस्कार साक्षात्कार करके पूर्व जाति का ज्ञान प्राप्त कर सकता है, उसी प्रकार मनुष्य समाधि के अभ्यास से जिस समय उसको विवेक ज्ञान प्राप्त होता है वह अपने संयमी चित्त को पर–चित्त ज्ञानादि में संयमित करता है तो उसको तत्काल ही पर –चित्त ज्ञान हो जाया करता है। भगवान् पतंजलिदेव ने इसी विषय को स्पष्ट करते हुए लिखा है:–

प्रत्ययस्य परचित्त ज्ञानम्।

अर्थात्–परपुरुष की वृत्ति में जिस समय योगी संयम करता है तो उसे पर–चित्त का ज्ञान हो जाया करता है, किन्तु उसका चित्त किस स्थिति में है यह ज्ञान होता है, चित्त कहाँ अनुरागी है इसका ज्ञान नहीं होता। क्योंकि चित्त का 'अनुराग' उसके संयम का विषय नहीं है। इसी बात को भगवान् पतंजलिदेव कहते है –

न च तत्सालम्बनं तस्याविषयीभूतत्वाद्।

क्योंकि योगी के संयमी चित्त ने उसके अनुराग को अपने संयम का विषय नहीं बनाया। प्रत्ययमात्र को अपने संयम का विषय बनाया है। इसलिए योगी को चितिमात्र से परचित्त का ज्ञान होता है। यदि योगी उसके अनुरक्त चित्त को अपने संयम का आधार बनाये तो उसके

चित्त के अनुरागी धर्मों का साक्षात्कार भी कर सकता है और यह जान सकता है कि–अमुक व्यक्ति का चित्त कहाँ अनुराग वाला है और उसके चित्त का विषय काम है, क्रोध है, लोभ है या मोह है। इस प्रकार योगी परचित्त को अपने संयम का आधार बनाकर परचित्त ज्ञानादि भली प्रकार से प्राप्त कर सकता है। आवश्यकता इस बात की है कि मनुष्य अपने मन को धारणा–ध्यान–समाधि के बल से संयमित बनाये।

▣▣▣

मेरे गुरु जी का मेला आया

जगदीश राए बंसल, 'अधम', नई दिल्ली

मेरे गुरु जी का मेला आया
जयकारे हो रहे गली गली (टेक)

मैंने गुरु जी के चरण पखारे।
गंगा बह रही गली गली।।
मेरे गुरु जी .....

मैंने गुरु जी को हार पहनाया।
बगीया खिल गई गली गली।।
मेरे गुरुजी .....

मैंने गुरु जी की ज्योति जगाई,
जग मग हो रही गली गली।।
मेरे गुरु जी....

मैंने गुरु जी का ध्यान लगाया
दर्शन हो रहे गली गली।।
मेरे गुरु जी.....

मैंने गुरु जी का सत्संग कराया।
कीर्तन हो रहे गली गली।।
मेरे गुरु जी.....

मैंने गुरु जी का भोग लगाया।
भण्डारे हो रहे गली गली।।
मेरे गुरु जी.....

▣▣▣

गुरु पूर्णिमा एक महान अमृत पर्व

आचार्य ब्रह्मचारी श्री दासलाल

गुरु पूर्णिमा जन सामान्य में व्यासपूर्णिमा या व्यास पूजा के रूप में प्रसिद्ध है। व्यास शब्द का अर्थ सामान्यतया लोग कथा–प्रवचन तथा उपदेश करने वाले कथावाचक के रूप में लेते हैं किंतु व्यास शब्द का अर्थ संस्कृत में विशाल है इसके विपरीत संक्षेप को समास कहा जाता है। जो ज्ञान का विस्तार करे वही व्यास है।

गुरु शब्द गृ शब्दे (क्र्यादिगण) तथा गृ–निगरणे इन दो धातुओं से व्युत्पन्न होता है। **''गृह्णाति उपदिशति धर्ममिति गुरुः''** जो योग धर्म का उपदेश करे वही गुरु है। **''यदा गीर्यत स्तूयते देवगन्धर्वादिभिरिति गुरुः।''** अथवा देव गन्धर्वादि जिनकी स्तुति करते हैं वह गुरु है। जो गुरु है वही पूर्ण है। गुरु वह है जो गरिमामय है जिनमें गुरुत्वाकर्षण है जीवों को अपनी ओर खींच लेते हैं। जो सबसे बड़ा है सर्व समर्थ है, व्यापक है, अनन्त है। पूर्णत्व गुरुत्व में ही है। उस पूर्ण सत्ता को ही शास्त्रों की भाषा में ब्रह्म कहते हैं अर्थात् जो सर्वत्र व्याप्त है **''सर्व समाप्नोषि ततोऽसि सर्वः''** (गीता) जो सबको अपने में समेट लेता है इसलिए वह सर्वरूप है। उसे सर्वगत भी कहा जाता है। सर्वगत होने से ब्रह्मपूर्ण है। उपनिषद् में मंत्र आता है।– **''पूर्णमिदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते, पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्ण मेवावशिष्यते''** अर्थात वह ब्रह्म पूर्ण है, यह जगत भी उससे व्याप्त होने के कारण पूर्ण कहा जाता है। पूर्ण में से पूर्ण निकाल देने पर भी पूर्ण ही शेष रहता है।

यहाँ पर पूर्ण शब्द ब्रह्म की अभिव्यक्ति के लिए ही व्यवहृत हुआ है। श्रुति में 'रसो वै सः' कहकर ब्रह्म को रसरूप माना है। रसों का मूल स्त्रोत चन्द्रमा है। पूर्ण चन्द्रमा में अमृत बनता है। वह अमृत ही रसरूप ब्रह्म है। गुरु में भी अमृतत्व है। शिष्य को अमृत अमर बना देने की सामर्थ्य गुरुदेव में ही होती है अन्य किसी में नहीं। गुरु पूर्ण समर्थ होता है चेतना का महास्त्रोत होता है। भगवान का अवतरण समय–समय पर इस संसार में होता चला आ रहा है। जब वे मानवाकृति में आते हैं तब वे अपने सदु–पदेश से, अपने दिव्य सस्पर्श से, लोकोत्तर चरित्र से जीव के कल्याण के लिए कृत संकल्प रहते हैं, इस रूप में भगवान का ऐसा मिलन जीव का आध्यात्मिक एवं भौतिक उभय मिलन होता है। उस समय वे गुरु शिष्य के रूप में ही होते हैं। उस क्षण जीव उस परम गुरु अपने इष्ट को पाकर यह भूल जाता है कि वह जन्मने मरने वाला जीव है। वह इष्ट के रूप में तदाकार हुआ सिद्ध समर्थ गुरु अपने शिष्य के

आत्मोत्थान के लिए मानव शक्ति का संचार करके शारीरिक, मानसिक एवं आत्मिक मल के शोधन के लिए भिन्न-भिन्न प्रकार की क्रियायें कराते रहते हैं।

भगवान कृष्ण गीता में मन और बुद्धि को इष्ट के सगुण रूप में समाहित कर देने की बात कहते हैं। भगवान की कृपा से जीव के मन और बुद्धि को अपने में विलय करा लेते हैं जिससे जीव जीवत्व को त्यागकर ब्रह्मत्व को प्राप्त हो जाता है। उस परम भाग्यशाली जीव को भगवान जीवब्रह्मैक्य का बोध करा देते हैं। यही भगवान के अवतरण का रहस्य एवं उद्देश्य है। भगवान के इसी गुरुत्व के आकर्षण के कारण ही वे जगदगुरु कहलाते हैं। जीवों का इस प्रकार से परम गुरु से मिलन सहसा संयोगवश नहीं होता है। जन्म जन्मान्तर की उस आत्मदेव से मिलने की चाह तद्भावना भक्ति होकर उस जन्म के दृढ़ संस्कार सम्बन्ध के स्थापित होने पर यह बात समभव हो जाती है। अन्यथा परात्पर शक्ति के पृथ्वी पर आविर्भाव होने पर भी उनके निकट सम्पर्क में आने वाले व्यक्ति भी अपने कर्मों की मलिनता से भगवान के निन्दक ही बन कर जीवन बिता देते हैं। हम में से बहुत से महाभाग्यवान पुरुषों ने उन परम देव का श्री सद्गुरुदेव चन्द्रमोहन जी महाराज के रूप में दर्शन एवं पावनसानिध्य का परम लाभ प्राप्त किया है। उनके पावन चरणतल में बैठने पर ही जीव की समस्त कामनायें एवं वासनायें विलुप्त हो जाया करती थीं। परमशान्ति एवं आनन्द का साम्राज्य छा जाता था। प्राण स्वतः ही निश्चल हो जाता था। सभी उपस्थित शिष्य समुदाय का जिनके गुरुदेव ही एक मात्र परायण एवं जीवन के सूत्रधार हैं यह देखकर 'मयि सर्वमिदं प्रोतं सूत्रे मणिगणा इवा' यह वचन मानस पटल पर घूमने लगता था।

ऋषि कल्प गुरुदेव के देदीप्यमान मुखमण्डल को देखकर आध्यात्म की किरणें स्वतः शिष्यों के मानस तल को स्पर्श कर लिया करती थीं। गुकार अन्धकार का वाचक है और रुकार अन्धकार निवारक या प्रकाश को देने वाला। जो अन्धकार अज्ञान को दूर कर शिष्य के हृदय में ज्ञान की ज्योति जला दे वही गुरु है ऐसा गुरुगीता का वचन है। 'नास्ति तत्वं गुरोः परम' गुरु से आगे कोई तत्व नहीं है यह भगवान् सदाशिव का आदेश है। शिष्य का जीवन और मृत्यु समर्थ गुरुदेव के हाथ में होता है। आवश्यकता है शिष्य के गुरु के प्रति पूर्ण समर्पण की जो काफी दुःसाध्य है। योग से जीव और ब्रह्म का एकत्व होता है। गुरु भक्ति से गुरु शिष्य का एकत्व हो जाता है जो शिष्य के जीवन का लक्ष्य रहा करता है। इसीलिए शिष्य नित्य ही गुरु गीता के इस श्लोक का मनन करता हुआ कहता है-

नित्यं शुद्धं निरामासं निराकारं निरंजनम्।
नित्यबोधं चिदानन्दं गुरु ब्रह्म नमाम्यहम्।।

अर्थात् जो नित्य है, शुद्ध है आभास रहित, आकार रहित, माया रहित, नित्यबोध स्वरूप, चेतन और आनन्द रूप गुरु ब्रह्म को मैं नमस्कार करता हूँ। इस प्रकार गुरुदेव की सेवा से, चिन्तन से शिष्य गुरु-ब्रह्म की उपासना करता है वह भव बन्धन से मुक्त हो जाता है

इसलिए गुरुदेव को भवभय विनाशक कहा गया है। गुरुदेव स्वयं मन्त्र स्वरूप होकर शिष्य के आध्यात्म शरीर में अनुप्रविष्ट तत्पश्चात् शिष्य को अपने नित्य चैतन्य स्वरूप का बोध कराते हैं। शास्त्रों का लेख है–

गुरु पूजाविहीनानाम् न सिद्धिः स्याद् कदाचन

जो गुरुदेव की पूजा आराधना नहीं करते तथा गुरुदेव को सन्तुष्ट नहीं रखते उन्हें कभी सिद्धि प्राप्त नहीं होती। जो गुरुदेव के दिये मन्त्र का जाप करता है तथा गुरुपदिष्ट मार्ग से ध्यान करता है वही गुरुदेव का प्रिय भक्त होता है। उसे ही अन्तर्ज्ञान प्राप्त होता है।

इस वर्ष गुरु पूर्णिमा 25 जुलाई को मनाया जा रहा है। आओ! सभी गुरु भक्त इसे अत्यन्त हर्ष और उल्लास के साथ मनायें व गुरु कृपा के भाजन बनें। गुरुपूजा को ही ब्रह्मोपासना कहा गया है।

■■■

गुरु मंत्र पल पल जपते रहो

डा. जे.पी. शर्मा, हिमाचल प्रदेश

गुरु मंत्र को पल–पल जपते रहो।
मन को विषयों के विष से हटाते रहो।।
देखना इन्द्रियों के न घोड़े भगें।
इनको संयमों के दिन रात कोड़े लगें।।
योग रथ को सुमार्ग पर बढ़ाते रहो।।
गुरु मंत्र को .....(1)

काम करते रहो, गुरु मंत्र जपते रहो।
सद्गुरु प्यारे का, तुम ध्यान धरते रहो।।
पापों की वासनायें नित मिटाते रहो।।
गुरु मंत्र की.....(2)

याद आयगी हमारी कभी न कभी।
दर्शन देंगे प्रभु जी कभी न कभी।।
यही आशा मन में हर पल जगाते रहो।।
गुरु मंत्र को.....(3)
दु:ख में तड़पो नहीं सुख में हर्षो नहीं।
प्राण जाँय मगर सद्गुरु को भूलो नहीं।।
गुरु मंत्रो का खजाना बढ़ाते रहो।।
गुरु मंत्र को .....(4)

मंत्र जप जप के भक्तों ने पाई गति।
हम योगी बच्चे इसी से करें विनती।।
अपने सद्गुरु को मन से रिझाते रहो।।
गुरु मंत्र को .....(5)

■■■

।। नास्ति तत्वं गुरोःपरम।।

अवनीश भटनागर, सहारनपुर

पारब्रह्म श्री सद्गुरु परम तत्व ही सभी ईश्वरीय विग्रहों में प्रकाशित है। इन ईश्वरीय विग्रहों की शक्तें भिन्न–भिन्न हो सकती हैं। कभी श्री कृष्ण, श्री राम तो कभी श्री शंकर श्री हनुमान जी श्री दुर्गा आदि। वास्तव में इन सब में श्री सद्गुरु परम शक्ति ही थोड़े या अधिक अंश से प्रकाशित एवं क्रियाशील है। हमारे दादा सद्गुरुदेव श्री रामलाल महाप्रभु जी एवं सद्गुरुदेव श्री चन्द्रमोहन महाप्रभु जी के रूप में वही परम शक्ति अनन्त कला से सुशोभित व त्रिजग प्रकाशित एवं विख्यात है। समस्त देवी देवता एवं सिद्धयोगि जन इस बात को बहुत–बहुत अच्छी प्रकार से जानते हैं और भेजा करते हैं उन परम कृपावान सद्गुरुदेव श्री चन्द्रमोहन जी के पावन श्री चरण कमलों में, अपने लाड़ले एवं कृपापात्र भक्तों को इस भावना से कि अब तुम सर्वशक्तिमान को तत्वतः जानो श्री सद्गुरुदेव तुम्हें बाहरी दुनिया से अन्दर की दुनिया में ले जाकर आत्म साक्षात्कार कराकर तत्वबोध करायेंगे तपमार्ग में लगाकर शरीर शोधन करायेगें 'नातपस्विनो योग सिद्धयति' बिना तप के योग सिद्ध नहीं होता। ब्रह्म क्या है इसको हम केवल सद्गुरु कृपा से ही जान सकते हैं केवल भक्तिभाव या बाह्य वृत्ति के किसी अन्य साधन से इसे कदापि नहीं जाना जा सकता, बिना योग से ब्रह्म से सदैव वियोग ही बना रहता है। इस योग विद्या के जान लेने पर सब कुछ ज्ञात हो जाता है। 'यस्मिन ज्ञाते सर्वमिदं ज्ञातं भवति'। श्री सद्गुरुदेव जी के शक्तिपात से संस्कारी का योग मार्ग में प्रवेश होता है फिर श्री सद्गुरुदेव ले चलते हैं उसे आत्मउत्थान की ओर बिल्कुल भी आलसी या निष्क्रिय नहीं होने देते निरंतर क्रियाशील बनाये रखते हैं। सिद्धयोग पथ पर उसे ब्रह्म से एकाकार कराकर वास्तव में 'तत्वमसि' बनाकर ही कुछ विश्राम देते हैं। और क्या–क्या दे डालते हैं उसे, साधक इसका अनुमान भी नहीं कभी लगा सकता ऐसे दाता हैं श्री सद्गुरुदेव। कहा भी है – 'श्री सद्गुरु समान दाता नहि तीन लोक में माहि।'

पूर्व जन्मों के भारी तप स्वाध्याय के कारण से हम सर्वशक्तिमान महाप्रभु श्री रामलाल जी के पौत्र शिष्य हैं और सिद्ध योगेश्वर श्री चन्द्रमोहन महाप्रभु जी के औरस पुत्र हैं। श्री सद्गुरुदेव जी के श्री चरणों में पहुँचने से पूर्व हम जिन देवी देवताओं की आराधना करते थे उन्होंने अति दया करके हमें श्री सद्गुरु देव जी के पावन श्रीचरणों में प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से भेजा कि जाओ अब तुम श्री सद्गुरु देव जी के कन्ट्रोल में रहकर आत्मउत्थान के मार्ग पर चलकर तत्व बोध प्राप्त करो। श्री रामचरित मानस में कहा भी है – **''बिनु हरि कृपा मिलै नहि संता।''** अनुभवी सिद्धयोगी महात्मा कबीर भी कहते हैं– 'जब गोविन्द कृपा करि तब गुरु मिल्या आई'। पर हम करने क्या लगते हैं जिन श्री सद्गुरु देव जी की महति कृपा से परम

कठिन एवं दुर्लभ आध्यात्मिक योग पथ पर चलने की तमीज आई थी उन पावन चरण कमलों को ही भूल जाते हैं और भटकते घूमते हैं झूठी आध्यात्मिकता की दुकानों में कि कहीं शान्ति व सच्चा ज्ञान प्राप्त हो जाये पर मिलता कुछ नहीं। पलट–पलट कर जाते हैं देवी–देवताओं की शरण जिन्होंने तो हमें पहले ही श्री श्री सद्गुरुदेव महाप्रभु जी की शरण में भेज कर अपना कार्य पूर्ण कर दिया था। अब ऐसे जीवों को देवी–देवता भी वरदान नहीं देते बल्कि धिक्कारते हैं और जीव समझ ही नहीं पाता की मेरी दुर्गति क्यों हो रही है और श्री सद्गुरु देव जी की शरण में समर्पण पूर्वक वह कभी जाता नहीं इसलिए उसके संकट कटते नहीं और आत्म उन्नति होती नहीं। कहा भी है– **हरि खड़े गुरु ठौर है गुरु रूठे नहि ठौर।**

मीरा, सूरदास, नरसी आदि को भगवान तो पहले से ही सुलभ थे परंतु श्री भगवान के कहने पर ही इन भक्तों को श्री सद्गुरु देव की शरण भेजा गया ताकि जो ब्रह्मरूप उनको सहज सुलभ है उसे वह भली प्रकार तत्वत: जान सकें।

इसलिए आदरणीय भाईयों व बहनों 'उत्थिष्ट जाग्रत:' उठो और जाग जाओ। अनन्त कलाओं से सुशोभित सर्वशक्तिमान परब्रह्म श्री रामलाल महाप्रभु जी एवं श्री चन्द्रमोहन महाप्रभुजी के परम कृपामय सिद्ध संकल्प में आप आ चुके हैं उनके शुभ संकल्प में आपका इहलौकिक एवं पारलौकिक कल्याण है उनसे दूर जाकर अपना पतन निश्चित न करें, जगत में भ्रमित होकर मारे–मारे न घूमें जिन देवी देवताओं, पीर फकीरों, बाबाओं के दर पर मस्तक रगड़ते हो वह तो सब तुम्हारे महाप्रभुजी एवं श्री सद्गुरुदेव जी की उपासना करते हैं और उनके कृपा प्रसाद की आशा लगाये रहते हैं। अपनी दशा को दीन बनाकर मारे–मारे दर–दर न घूमो। महासिद्धों के बालक हो शेर की भांति रहो बस श्री श्री सद्गुरु आज्ञा पालन करते रहो। समर्पण पूर्वक गुरु मन्त्र का अधिकांशत: जाप करते रहो आनन्दकन्द श्री सद्गुरुदेव जी सबका कल्याण करते ही करते हैं। श्री सद्गुरु देव जी ने अपने बच्चों को जो गुरु मन्त्र दीक्षा में दिया है सब लोग तो उसके जपने तक के अधिकारी नहीं होते हैं। ऐसे मोक्ष प्रदाता परम दिव्य महामन्त्र का सदैव जप करते रहना चाहिए। इससे बढ़कर संसार में कोई अन्य मन्त्र नहीं है।

श्री गुरुपूर्णिमा महापर्व पर अपने दादा सद्गुरु महाप्रभु श्री रामलाल जी एवं परम सद्गुरुदेव श्री चन्द्रमोहन महाप्रभुजी के पावन श्री चरण कमलों में पूर्ण समर्पण पूर्वक यह संकल्प लें कि आपकी अनन्य निष्ठा भक्ति करेंगे, आपकी आज्ञा पालन करेंगे, आपकी सिद्धयोग विद्या को आत्मसात करेंगे, अपनी वृत्तियों पर कन्ट्रोल कर आत्मशोधन करेंगे, निरन्तर जप स्वाध्याय एवं योग ध्यान के द्वारा दिव्य रोशनी हासिल करेंगे जो हमारे व अन्य साधकों के लिए मार्ग दर्शक बनेगी व अपने सत् कर्म व शुभ कर्मों के द्वारा अपने श्री सद्गुरु देव जी का पावन नाम जगत में रोशन करेंगे। यही सबसे अच्छी व सबसे सच्ची श्री गुरु पूजा और गुरु दक्षिणा हमारी ओर से श्री सद्गुरु देवजी के पावन श्री चरण कमलों में होगी।

■■■

अष्टाङ्ग योग

प्रो. ऋषिराम शर्मा

मन जब तक कामनाओं के माध्यम से संसार को देखता रहता है तब तक योग में प्रवेश ही नहीं होता, क्योंकि उस अवस्था में आत्मा चित्तवृत्तियों का ही रूप धारण किये रहती है। अतः बुद्धि में आत्मप्रकाश की अनुभूति सम्भव ही नहीं। ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार जब तक पर्दे पर चलचित्र (मूवी) का संसार दिखाई देता है तब तक प्रकाश किरणें नहीं दिखाई देती। संसार इन्द्रियों का विषय है अतः संसार का मन से अभाव तभी सम्भव है जब मन इन्द्रियों पर नियन्त्रण कर उनको अपने-अपने विषयों से विमुख कर सके। इन्द्रियों के विषयाकर्षण से मुक्ति पाने के बाद मन को अपने संकल्प-विकल्पों पर विराम लगाकर अमनी भाव में जाना होगा, क्योंकि-

मनसो हि अमनीभावे अद्वैतभावं तदाप्नुयात्

अर्थात् मन जब अमनीभाव प्राप्त कर लेता है तभी विशुद्ध बुद्धि में लय हो सकता है तदन्तर शुद्ध बुद्धि ही आत्मा के प्रकाश से प्रकाशित होकर स्वयंप्रकाशी आत्मतत्व में लीन होती है। श्रुति का प्रमाण है कि-

एषः सर्वेषु भूतेषु गूढ़ात्मा न प्रकाशते।
दृश्यते त्वग्रय्या बुद्धयां सूक्ष्मया सूक्ष्मदर्शिभिः।।

अर्थात् समस्त प्राणियों में चित्त में अविद्या के आवरण के कारण गुप्त आत्मा बुद्धि में प्रकाशित नहीं होती। उसे केवल सूक्ष्म ज्ञानदृष्टि वाले योगी अतिसूक्ष्म तथा शुद्ध बुद्धि में ही देख सकते हैं, यानि प्रत्यय के अभाव में आत्मप्रकाश से प्रकाशित बुद्धिरूपी निर्मल दर्पण में ही आत्मसाक्षात्कार सम्भव है। बुद्धि को निर्मल बनाने के लिए माया के अनन्त गुणकर्मविकारों के मल को धोना होगा। यह कार्य शनैःशनैः धैर्यपूर्वक वैराग्य के भावों को पुष्ट करते हुए तथा निरन्तर श्रद्धापूर्वक चिरकाल की योगसाधना से ही सम्भव होता है। जैसे-जैसे मन का चिन्तन आध्यात्मिक भावों तक सीमित होता जायेगा वैसे-वैसे अविद्यामूलक बाह्यभावों का चिन्तन कम होता जायेगा। जब भी मन बाह्यभावों के अभिमुख हो उसे तुरन्त अन्तर्मुखी कर आध्यात्मिक भावों में लगा देना चाहिए।

इस साधना को करते-करते जब चित्त वृत्तियों के अभाव में शान्त हो जायेगा तब योगी को अक्षय तथा अनन्त सुख का अनुभव होता है, क्योंकि दुःखद रजोगुण तथा भ्रान्तिमूलक तमोगुण के शान्त हो जाने पर सुखद शुद्ध सतोगुण शेष रहता है जिसमें आनन्दस्वरूप तथा ज्ञानस्वरूप परमात्मा का प्रतिबिम्ब स्पष्ट दिखाई देने लगता है, क्योंकि 'सत्यं विज्ञानमानन्दं ब्रह्म' अर्थात् परमात्मा सत्य, विज्ञानस्वरूप तथा आनन्दस्वरूप है। यदि

बुद्धिबोधात्मक जीवात्मा में उपर्युक्त प्रकार की तन्मयता, परमात्मा में अनन्य श्रद्धायुक्त समर्पण निरन्तर चित्तरूपी दर्पण में चलता रहे तो यह दर्पण अनादिकाल से अर्जित पापों को धोकर उसे निर्मल बना ही देगा, क्योंकि यह परमात्मा की अहैतुकी कृपा है कि

सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।
अहं त्वां सर्वपापेभ्यः मोचयिस्यामि मा शुचः।।
अनन्यचेताः सततं यो मां स्मरति नित्यशः।
तस्याहं सुलभः पार्थ नित्ययुक्तस्य योगिनः।।

अर्थात् जो भक्तात्मा समस्त धर्मों यानि सांसारिक कर्तव्यों को त्यागकर अर्थात् मन को उधर से विमुख कर मेरे लिए समर्पित कर देता है, मैं ईश्वर उसके समस्त पापों को नष्ट कर देता हूँ। अतः उनके अवरोध की चिन्ता नहीं करनी चाहिए। जो नित्य निरन्तर अपने चित्त को मुझ परमात्मा के स्मरण में लगाता है, मैं भी ऐसे ही युक्तयोगी को सुलभ हो जाता हूँ। यह सर्वाधार तथा सर्वाश्रय परमात्मा की प्रतिज्ञा है। परमात्मा सर्वसमर्थ, सर्वज्ञ तथा सर्वनियन्ता है, फिर भी

'ये यथा मां प्रपद्यन्ते तान् तथैव भजाम्यहम्'

अर्थात् जो भी जीव मुझे जिस भावना से भजता है यानि मेरा स्मरण करता है, मैं परमात्मा भी उसका उसी भावना के अनुकूल भजन करता हूँ। जिसका परमात्मा भजन करे उसका कल्याण तो निश्चित ही है। ऐसा आश्वासन भगवान ने अपने मुखारविन्द से दिया है कि

तेषामहं समुद्धर्ता मृत्यसंसारसागरात्।
भवामि न चिरात् पार्थ मय्यावेशितचेतसाम्।।

अर्थात् जिनका चित्त मेरे चिन्तन में नित्य तथा निरन्तर अनन्ययोगभावना से लगा हो उनका इस भवसागर से उद्धार करने के लिए परमात्मा शीघ्र प्रकट हो जाते हैं। इसी कारण सगुण उपासना का विशेष महत्व है। जीवात्मा तथा परमात्मा में जो कल्पित भेद दिखाई देता है उस पर श्रुतिप्रमाण है कि

छायातापौ ब्रह्मविदो वदन्ति

अर्थात् ब्रह्मज्ञानियों के अनुसार परमात्मा तथा जीवात्मा का भेद धूप तथा छाया की भ्रान्ति है। जैसे अवरोध आने पर धूप ही छाया बन जाती है, वैसे ही अविद्या जनित गुण तथा कर्म के अवरोध के कारण बुद्धिरूपी गुहा में परमात्मा ही जीवात्मा के रूप में दिखाई देता है। जैसे ही ज्ञानदीप्ति से अवरोध नष्ट हो जाता है तब स्वतः जीवात्मा तथा परमात्मा का भेद नष्ट हो जाता है। इसी कारण जैसे ही अन्तःकरण से कर्माशय का मलावरण साफ हो जाता है, अन्तःकरण स्वतः परमात्मा के प्रकाश से प्रकाशित हो जाता है। इसी परम गुप्त रहस्य को

उपनिषद् में इस प्रकार कहा है कि–

तादृक् भवति विद्यप्ति यादृक खलु भावना।
क्षये तस्याः परं ब्रह्म स्वयमेवे प्रकाशते।।

अर्थात् मन में जैसी भावना रहती है, बुद्धि भी उसी भावना के ज्ञान से प्रकाशित रहती है। जब मन अमनीभाव को प्राप्त कर लेता है यानि उसमें कोई भी चित्तवृत्ति उत्पन्न नहीं होती तब वृत्तियों के नितान्त अभाव में बुद्धि परमात्मा के प्रकाश से ही प्रकाशित रहती है। यही आत्मसाक्षात्कार की स्थिति है। इस स्थिति में बुद्धि को जो अनुभूति होती है उसका वर्णन जगदात्मा श्रीकृष्ण ने अपने मुखारविन्द से किया है कि

सर्वभूतस्थमात्मानं सर्वभूतानि चात्मनि।
ईक्षते योगयुक्तात्मा सर्वत्र समदर्शनः।।

अर्थात् जब शुद्ध बुद्धि परमात्मा के सर्वव्यापक तेज से प्रकाशित हो जाती है तब वह योगी समदर्शी हो जाता है यानि समस्त प्राणिमात्र को अपने में स्थित तथा समस्त प्राणियों में अपने को स्थित अनुभव करता है। इसका कारण यही है कि मन के अमनीभाव में योगी को स्वतः अद्वैतभाव प्राप्त हो जाता है। इसका श्रुतिप्रमाण है कि

मनसो हि अमनीभावे अद्वैतभावं तदाप्नुयात्

अर्थात् दृष्टा अपने अद्वैतस्वरूप में स्थित हो जाता है। किंतु अर्जुन को भी ऐसी स्थिति असंभव सी लगी। उन्होंने शंका व्यक्त की कि–

चंचलं हि मनः कृष्ण प्रमाथी बलवत् दृढम्।
तस्याहं निग्रहं मन्ये वायोरिव सुदुष्करम्।।

अर्थात् हे कृष्ण! मन का अमनीभाव तो असम्भव सा है, क्योंकि मन अत्यन्त चंचल, अत्यन्त बलवान, हठी तथा दृढ़ संकल्प वाला है, उसको नियन्त्रित करना उतना ही दुष्कर है, जितना कि वेगवान वायु के प्रवाह को रोक देना। भगवान श्री कृष्ण ने अर्जुन की इस शंका की पुष्टि करते हुए शंका का निराकरण इस प्रकार किया है कि

असंशयं महाबाहो मनो दुर्निग्रहं चलम्।
अभ्यासेन तु कौन्तेय वैराग्येण च ग्रह्यते।।
असंयतात्मा योगो दुष्प्राप्तः इति मे मतिः।
वश्यात्मना तु यतता शक्यो आप्तु उपायतः।।

अर्थात् निश्चय ही मन अत्यन्त चंचल, अत्यन्त गतिवान है तथा उस पर नियन्त्रण करना अत्यन्त कठिन कार्य है। परमात्मा की त्रिगुणात्मिका महामाया मन के माध्यम से ही संसार का प्रपंच प्रदर्शित करती है, जीवसृष्टि की रचना करती है तथा उसका संचालन करती है।

(शेष अगले अंक में)

परम पूज्य ब्रह्मचारी श्री गोपालानन्द जी महाराज के ध्यानानुभव

गुरु नानक देव के दर्शन और बलाकर्षक साधन की प्राप्ति

एक दिन ब्रह्मचारी जी के मन में संकल्प हुआ कि मैं ध्यान में गुरु–नानक देव के दर्शन प्राप्त करूं। मन में संकल्प आने की देरी थी। वृत्ति एकाग्र थी ही। आँखें बन्द करके, ध्यान–मग्न हो गये तो देखा गुरुनानक देव एक शोभायमान बगीचे में सामने बैठे हैं। गुरुनानक देव को देखकर ब्रह्मचारी जी ने प्रणाम किया और प्रार्थना की कि महाराज मैं एक ऐसा प्रबल साधन चाहता हूँ जिससे मेरे शरीर में अतिशय बल बढ़ जाय। योग–दर्शन में इस प्रकार का लेख मिलता है। बलेषु हस्तिबलादीनि। अर्थात् बलों में संयम करने पर योगी को हाथियों का बल एक दम प्राप्त हो जाता है। सो मैं आपसे इसी प्रकार का साधन चाहता हूँ। गुरुनानक देव जी ने आशीर्वाद देते हुए कहा–जिनकी कृपा से तुम मेरे पास आ सके हो, ये साधन तुम उन श्री प्रभु जी से सीखो, जो सब प्रकार से परिपूर्ण परात्पर शुद्ध ब्रह्म है और सृष्टि के आदि से अन्त तक रहने वाले पूर्ण सिद्ध हैं। किंतु जब ब्रह्मचारी जी ने बहुत आग्रह किया तो गुरुनानक देव ने बलाकर्षण प्राणायाम की एक विधि बता दी। उन्होंने ब्रह्मचारी जी से कहा– इस साधन को तुम अपने गुरुदेव जी की आज्ञा से ही करना अन्यथा सफल नहीं हो सकोगे। गुरुनानक देव जी से उपदेश प्राप्त कर ब्रह्मचारी जी समाधि से उठे और आनन्दकन्द परम कल्याणघन श्री प्रभु जी के बिना पूछे ही बलाकर्षक प्राणायाम कर डाला। उस साधन के करने से उनके शरीर में अद्भुत बल का संचार हुआ, किंतु वह उसको संभाल न सके। उनका शरीर फटने लगा। ब्रह्मचारी जी के मन में बड़ा दुःख हुआ और वह ठीक करने का प्रयत्न करने लगे, किंतु जब वह अपने प्रयत्न में सफल न हो सके तो फिर ध्यान मग्न होकर गुरुनानक देव की शरण ली और रक्षा की प्रार्थना की। गुरु नानक देव ने कहा–हमने तुमसे पहले ही कह दिया था कि श्री प्रभुजी की आज्ञा प्राप्त किये बिना यह साधन मत करना। परंतु तुमने अनाधिकार चेष्टा की है, अब उन्हीं कृपानिधि की शरण में जाकर प्रार्थना करो, उन्हीं की कृपा से यह ठीक हो सकता है। गुरुनानक देव के कथनानुसार श्री ब्रह्मचारी जी समाधि से उठे और श्री करुणार्णव प्रभु जी शरण में आकर प्रार्थना की और अपनी भूल पर पश्चाताप किया तब श्री कृपानाथ जी ने कृपाकर ब्रह्मचारी जी के शरीर पर मक्खन तथा कपूर मिलाकर मालिश कराई। इसके फलस्वरूप उनके शरीर में जो वायु कुपित हो गया था वह शांत हो गया। इस उपद्रव शान्त हो जाने पर ब्रह्मचारी जी ने अपने मन में दृढ़ प्रतिज्ञा की कि अब कभी भी श्री प्रभु जी की आज्ञा के बिना कोई साधन नहीं करूंगा।

श्री वृन्दावनवास व रात्रि–जागरण

एक बार श्री ब्रह्मचारी जी श्री वृन्दावन भ्रमण के लिए गये हुए थे। श्री वृन्दावन के सभी प्रधान मन्दिरों के दर्शन कर व कुंज–निकुंजों में घूमकर वे रात्रि के समय श्री यमुना जी की पावन बालुका में आकर सो जाया करते थे। रात्रि–जागरण की महामहिमा कहीं–कहीं हमारी प्राचीन ग्रंथों में भी ऊँचे शब्दों में वर्णित है। जन्माष्टमी व शिवरात्रि को तो प्रायः सारे भारतवर्ष में रात्रि–जागरण की प्रथा प्रचलित ही है। इसके अतिरिक्त श्री वृन्दावन, ऋषिकेश, हरिद्वार आदि में वास करने वाले प्रायः सभी भजनानन्दी महात्मा रात्रि में जगकर भजन–ध्यान आदि का अभ्यास करना अधिकाधिक श्रेयस्कर समझते हैं। उन सबका अपना कार्यक्रम प्रायः रात्रि–स्मरण का ही रहता है। श्री ब्रह्मचारी जी श्रीकृष्ण–प्रेम में विभोर रहा करते थे किंतु रात्रि–जागरण का कोई विशेष ध्यान नहीं था। वह समझते थे कि वह घटघटवासी जो प्रेरणा करेंगे वह सब स्वतः होती ही रहेगी वही हुआ। एक दिन जब कि वे यमुना जी की पवित्र बालुका में सो रहे थे, स्वयं भगवान श्रीकृष्ण ने उनको जगाकर कहा कि तू यहाँ आकर भी रात को सोता है, यहाँ आकर रात को नहीं सोना चाहिए। अपने जीवन सर्वस्व की आज्ञा पाकर श्री ब्रह्मचारी जाग उठे व कुछ समय टहल कर ध्यानस्थ हो गये उसी दिन भगवान श्रीकृष्ण ने उनको ध्यानावस्था में रात्रि–जागरण का विशेष महात्म्य बतलाया। उसी दिन से श्री ब्रह्मचारी जी श्री वृन्दावन वास करते हुए नित्य नियम से रात्रि जागरण करने लगे। श्री वृन्दावन में रह कर रात्रि–जागरण करने से उनको बड़े–बड़े दिव्य अनुभव और उसी दिन से रात्रि–जागरण करना उनके जीवन का अंग बन गया। श्री ब्रह्मचारी जी दिन में भगवन्नाम–संकीर्तन करते रहते और रात्रि में ध्यान–मग्न रहा करते थे, उन्होंने निद्रा पर पूरा–पूरा अधिकार पा लिया था। उनकी निद्रा योग–निद्रा बन गई थी।

परिचय–ज्ञान और साधनों की प्राप्ति

श्री ब्रह्मचारी जी की समाधि की निर्मलता दिन प्रति दिन बढ़ती गई और उनको परिचय–ज्ञान की बहुत बड़ी योग्यता प्राप्त हो गई। उनका स्वभाव था कि वह जिस वन या प्रदेश में जाते वहाँ समाधि–संयम के द्वारा यह जानने का प्रयत्न किया करते कि इस प्रदेश में वहाँ कौन सा किस कोटि का महात्मा है इसके साथ वह यह भी जान लिया करते कि इसमें कौन सी विशेष शक्ति है। यह जान लेने के पश्चात् उससे शक्ति प्राप्त करने का प्रयत्न किया करते थे। किसी भी व्यक्ति के चित्त के भावों को जान लेने के लिए हमें दो उपाय करने पड़ते हैं। उनमें प्रथम–साधारण स्थिति में जिस समय व्यक्ति समाधिस्थ हो तो दूसरे के चित्त के भावों को अपने इष्टदेव से पूछ ले। दूसरे–यदि हमारा संयम परिपक्व हो चुका हो तो दूसरे के चित्त में संयम करने से उनके चित्त का ज्ञान हो जाया करता है। श्री ब्रह्मचारी जी ने इसी उपाय से अन्याय योगियों से साधन ग्रहण किए। उन्होंने एक बार भगवान की परम भक्ताभिलनी से

आकर्षक प्राणायाम सीखा था। वह आकर्षक प्राणायाम गुरु और ईश्वर के प्रति भी किया जा सकता है। एक बार ब्रह्मचारी जी ऋषिकेश की झाड़ियों में ध्यान में बैठे और उन्होंने अपनी ध्यान-स्थिति में देखा उन दिनों ऋषिकेश की झाड़ियों में एक ऊँचे तपस्वी महात्मा तपस्या, किया करते थे। तीव्र तप और अन्यान्य साधनों के द्वारा उनका योग में पूर्ण प्रवेश था। ब्रह्मचारी जी ने ध्यान में देखा कि वह अपने मन में किसी मन्त्र का जप करते हैं जिसके प्रभाव से वह आनन्दकन्द ब्रजचन्द भगवान श्री कृष्णचन्द में लीन हुए जा रहे हैं। ब्रह्मचारी जी के मन में इस मन्त्र को प्राप्त करने की भावना उत्पन्न हुई व अपने स्वभाव के अनुसार पहले उन्होंने समाधि द्वारा उनके चित्त को जानने का प्रयत्न किया। किंतु महात्मा श्री केशवानन्द अवधूत की शक्ति उत्कृष्ट थी। उन्होंने उनको अपने चित्त में प्रवेश नहीं करने दिया। ब्रह्मचारी जी अपने साधन में विफल रहे। दूसरे दिन प्रात: काल श्री ब्रह्मचारी जी पुन: अवधूत के पास गए और उनसे वह मन्त्र पूछा। अवधूत जी ने वह मन्त्र तो बतला दिया किंतु विनम्र भाव से कहा– इतने ऊँचे योगीराज योगेश्वर की शरण जाने पर भी तुम इधर-उधर भटकते हो, उनसे अधिक तुम्हें कोई क्या देगा, ऐसे सिद्ध योगिराज तो कभी भी हिमालय को नहीं छोड़ते। तुम्हें अनायास उनके चरणकमल प्राप्त हो गये हैं फिर भी तुम भटक रहे हो। इस प्रकार उपदेश देकर अवधूत जी ने ब्रह्मचारी को श्री प्रभुजी के चरणारविन्द में भेज दिया।

माता को सद्गति–अन्त मति सो गति

श्री ब्रह्मचारी जी की माता का देहावसान इनकी बहुत छोटी आयु में ही हो गया। एक दिन इनके मन में ख्याल पैदा हुआ कि वह किसी प्रकार इस बात को जान सकें कि उनकी माता जी का दूसरा जन्म कहाँ हुआ है? इसी प्रकार को मन में रखकर वह ध्यान मग्न हो गए। ध्यान में देखा कि उनकी माता किसी मछियारे के घर में पैदा हुई है और मछली पकड़ रही है। ब्रह्मचारी जी को अपनी माता जी की यह गति देखकर बड़ा आश्चर्य हुआ और उन्होंने ध्यानावस्था में ही श्री प्रभु जी के चरण-कमलों में प्रार्थना की – प्रभो! पवित्र अग्रवाल घराने में जन्म लेने पर मेरी माता की यह गति क्यों हुई? उनकी यह प्रार्थना सुनकर श्री प्रभुजी ने उनकी माता के देहावसान के समय के संस्कार दिखलाये और बतलाया कि तेरी माता का मन देहावसान के समय मछली के तेल में लगा रहा था उसकी भावना के कारण इसका मछियारे के घर में जन्म हुआ। ब्रह्मचारी जी ने समाधि अवस्था में ही अपनी माता को सद्गति के लिए श्री प्रभुजी से प्रार्थना की और उनको सद्गति दिलवाई। ध्यान से उठने के बाद ब्रह्मचारी जी ने अपनी बड़ी सहोदरा बहन रुक्मिणी देवी से पूछा उनकी माता की मृत्यु कैसे हुई थी तो उन्होंने बताया कि माता जी के पेट में अफाश (पेट फूला) था। बहुत उपचार कराये थे किंतु किसी से उनके पेट को आराम नहीं हुआ। उनके इस रोग को ठीक करने के लिए किसी डॉक्टर ने मछली के तेल का उपयोग बतलाया था। किंतु उस समय वह उपलब्ध नहीं

हो सका व उसका देहावसान हो गया। अपनी माता जी की यह गति देख व कारण का ज्ञान होने पर श्री ब्रह्मचारी जी को गीता का यह श्लोक स्मरण हो आया–

यं यं वापि स्मरन्भावंत्यजयन्ते कलेवरम्।
तं तमवैति कौन्तेय सदा सद्भावभावित:।।

(श्रीमद्भगवद् गीता)

अर्थात् अन्तिम समय में प्राणी जिन भावों का स्मरण करता हुआ देह–त्याग करता है वह उन्हीं भावों से प्रेरित होकर उस ही प्रकार का जन्म पाता है।

हेमराज चोपड़ा,
मंडी, हिमाचल प्रदेश

यह बाल बोध था मेरा–
निराकार निर्लेप–भाव से मान हुआ जब तेरा!
पहले एक अजन्मा जाना
फिर बहु रूपों में पहचाना
वे अवतार चरित तव नाना
चित्त हुआ चिर तेरा
निर्गुण, तू तो निखिल गुणों का निकला वास बसेरा।
तेरी मधुर मूर्ति, मृदु ममता
रखती नहीं कहीं निज समता
तरुण कटाक्षों की यह क्षमता
फिर जिधर भव–फेरा
अरे डाल रखा विराट ने सूक्ष्म, तुझी में डेरा।
डरता था मैं तुझसे स्वामी
किंतु सखा था तू सहगामी
मैं भी हूँ अब क्रीड़ा कामी
मिटने लगा अंधेरा
दूर समझता था मैं तुझको, तू समीप हंस हेरा।
अब भी एक प्रश्न था ''कोऽहं''?
कहूं कहूं जब तक ''दासोऽहं''
तन्मयता कह उठी कि ''सोऽहंम्''
बस हो गया सवेरा
दिन मणि के ऊपर उसकी ही किरणों का है डेरा!!

(साभार उद्धृत)

छात्र जीवन में योग की आवश्यकता

अनिल दुबे, दतिया

मनुष्य की समस्त उपलब्धियों में सबसे बड़ी उपलब्धि शिक्षा है। वह शिक्षा जो हमारी प्राचीन समय में प्रचलित थी। शिक्षा का अर्थ समस्त प्रकार से सक्षम बनाना। शिक्षा सद्गुणों की खान है आदमी को आदमी बनाने का यह सही माध्यम है।

शिक्षा से अच्छे नागरिकों का निर्माण होता है और अच्छे नागरिकों से समाज एवं देश मजबूत होता है। शिक्षा के क्षेत्र में आज हम इतनी उन्नति कर चुके हैं अनेक नये प्रयोगों के द्वारा नई–नई बातों का ज्ञान प्राप्त करते जाते हैं परंतु पीछे मुड़कर हमें उस शिक्ष को देखने का ध्यान नहीं रहता जो हमारे प्राचीन काल में प्रचलित था। शिक्षा में भले ही आशा से ऊपर प्रगति की है। लेकिन वर्तमान में नैतिकता, सदाचार, आध्यात्मिक भाईचारा में दिन प्रतिदिन कमी हो रही है शिक्षा चरित्र निर्माण नहीं कर रही है। शिक्षा के नाम पर विद्यालयों में कुछ विषयों के अध्यापन द्वारा बालक की कुछ बौद्धिक शक्ति, तर्क निर्णय विचार आदि का प्रशिक्षण जरूर होता है परंतु शिक्षा के सही अर्थ 'सा विद्या या विमुक्तये' आदि की उपलब्धि नहीं हो पाती। स्वामी विवेकानन्द जी के अनुसार–बालक के शरीर, मन व आत्मा में अन्तर्निहित शक्ति के विकास से है।

विभिन्न राज्यों की सरकार द्वारा शिक्षा के स्तर को ऊँचा उठाने के लिए विभिन्न योजनायें एवं कानून बनाये जा रहे हैं कि निःशुल्क शिक्षा दी जायेगी शिक्षा के स्तर को ऊँचा उठाने से या सभी की अनिवार्य शिक्षा से क्या देश को आगे ले जाया जा सकता या समाज में सुधार किया जा सकता है। आज भी अधिकांश अनपढ़ लोग ऐसे हैं कि जो शिक्षा प्राप्त हैं उनसे कहीं अधिक उनके अन्दर मानवता ईमानदारी परोपकार है।

आज सभी शिक्षाविद् यह कहते नहीं थकते कि आज शिक्षा जीवन से कट गई है शिक्षा न तो बालक को स्वस्थ बना पा रही है और न ही जीवन जीने की कला सिखाती है एवं न ही अनुशासन में रहना सिखाती है न ही व्यक्तित्व के सम्पूर्ण विकास में सहायक हो रही है। विद्यालयों में पढ़ने–पढ़ाने की उत्तम से उत्तम सुविधायें दी जा रही हैं परंतु बालकों में अपने वातावरण के साथ सामंजस्य करने की समस्यायें बढ़ रही हैं। आज देखने में आता है कि शिक्षित ही व्यक्ति के अन्दर संस्कार हीनता, वाणी में कठोरता, स्वार्थ, अनैतिकता अधिक देखने को मिलती है। इस प्रकार की शिक्षा देने एवं लेने से क्या फायदा जब तक शिक्षा के साथ–साथ व्यक्ति के अन्दर संस्कार का अभाव होगा शिक्षा देने का कोई महत्व नहीं है। सभी तरह की तकनीकी और गैर तकनीकी शिक्षा का व्यापार जोरों पर है। शिक्षा बाजार में बिक रही

है परिणाम यह कि जीवन का कोई मूल्य न ही रहे लेकिन ज्यादा से ज्यादा अर्थोपार्जन जुटाओ जिससे शान्ति और शक्तियों के विकास में कमी ही होती जा रही है। जब व्यक्ति का मन एवं जीवन दो जगह बंट जाता है तो वह व्यक्ति न तो अपना न ही समाज का कल्याण कर सकता है।

जीवन की पूर्णता एवं समस्त समस्याओं का निराकरण यदि है तो वह है योग विद्या प्राचीन समय में योग की वैज्ञानिक पद्धतियाँ थी जिनको आधार मानकर समस्त प्रकार की शिक्षा दी जाती थी। गुरुकुल शिक्षा के क्षेत्र में जितने परिणामदायी सिद्ध हुए उतने आज वैभवशाली शिक्षा नहीं दे पा रहे हैं। जीवन से धीरे–धीरे यह शिक्षा लुप्त होती गयी तथा यम, नियम, सदाचार व्यक्ति से दूर होते गये।

कुछ योग प्रशिक्षण केन्द्रों पर योग शिक्षा (वह योग शिक्षा जिस शिक्षा से समस्त विद्या का ज्ञान प्राप्त हो जाता) दी जाती है परंतु वहाँ भी ऐसे योग शिक्षक शिक्षा देते हैं जिनमें पूर्ण भ्रष्टाचार अनैतिकता स्वार्थ एवं संस्कारहीनता विराजमान है जिनके ऊपर राजनैतिक लोगों का पूर्ण आशीर्वाद रहता है। योग केन्द्र भी धीरे–धीरे अर्थोपार्जन के साधन बनते जा रहे हैं।

शरीर में जो स्थान आत्मा का है वही स्थान शिक्षा में योग का है। योग से व्यक्ति का मन स्फटिक मणि के समान उज्जवल हो जाता है। समस्त विद्याओं में श्रेष्ठतम योग विद्या है शिक्षा के साथ–साथ जीवन में योग विद्या परम आवश्यक है। योग ही सही अर्थों में व्यक्ति/बालक का सर्वांगीण विकास कर सकता है। योग बहिर्मुखी वृत्तियों के प्रवाह को रोक कर अन्तर्मुखी बनाने का कार्य करता है। जिससे बालक के जीवन में घर परिवार में, समाज में योग्यता के साथ–साथ कार्यकुशलता में वृद्धि होती है।

कार्यकुशलता से बालक में अपार आत्म विश्वास, साहस, तीव्र बुद्धि समय पर सही निर्णय लेने की क्षमता, सभी के प्रति प्रेम, परिश्रम की क्षमता, शारीरिक एवं मानसिक रूप से स्वस्थ रहने की कला आ जाती है।

जीवन में क्लेशों की निवृत्ति भी योगाभ्यास के द्वारा हो जाया करती है। योग व्यक्ति को सुखी जीवन के साथ स्वस्थ जीवन प्रदान करता है। योग से बालक की चेतना में अद्भुत विकास होता है इसमें कोई सन्देह नहीं।

जीवन तत्व साधन की नौ क्रियाओं के निरन्तर अभ्यास के द्वारा व्यक्ति शारीरिक, मानसिक विकास में अद्भुत विकास का समावेश होता है।

प्राणायाम एवं ध्यानाभ्यास द्वारा मन्दबुद्धि के छात्रों की एकाग्रता बढ़ती है जिससे बालकों में बुद्धि का विकास होता है। जब शरीर में शक्ति होगी तो जीवन में उत्साह तथा रोग प्रतिरोधक क्षमता बढ़ती है। जब जीवन में उत्साह होगा तो बच्चों के सारे कार्य बनेंगे यदि जीवन में उत्साह नहीं तो बने हुए कार्य भी बिगड़ जाते हैं यह सब योग द्वारा ही सम्भव है।

इसी प्रकार षटकर्म की क्रियाओं से शरीर की शुद्धता, योगासनों से दृढ़ता, मुद्राओं से स्थिरता, प्रत्याहार से धैर्य, प्राणायाम से हलकापन इस क्रम को बनाये रखने से भी जीवन में अद्‌भुत विकास होता है।

योग के आठ अंगों के पालन के द्वारा बालकों के अन्दर स्वस्थ शरीर में स्वस्थ मस्तिष्क का विकास एवं जीवन के विभिन्न पक्षों में ऐसा विकास होगा कि जीवन में स्वयं भी सुख और शाँति का अनुभव तो करेंगे ही साथ ही प्राणी मात्र को सुख और शाँति का दान दे सकेंगे।

यदि जीवन में कुछ प्राप्त करने का उद्धेश्य है तो वह योग शिक्षा के माध्यम से प्राप्त किया जा सकता है।

छात्र जीवन में योग विद्या परम आवश्यक है, योग जीवन दर्शन है, योग आत्म दर्शन की श्रेष्ठ विद्या है, योग सम्पूर्ण विद्या का खजाना है।

■■■

याद रखो

गुरु में भक्ति और श्रद्धा अवश्य करनी चाहिए। जो गुरु का भक्त नहीं होगा, वह भगवान् का भक्त कैसे होगा? परंतु इस गुरुभक्ति का आरम्भ गुरुजनों-माता-पिता आदि की भक्ति से करना चाहिए। जो माता-पिता को नहीं मानता, वह गुरु और भगवान् को सहज में नहीं मानेगा। प्रहलाद का उदाहरण देकर माता-पिता की आज्ञा न मानने का समर्थन करना सरल है, परंतु प्रहलाद बनना बड़ा कठिन है। प्रहलाद या भरत के लिए माता-पिता की आज्ञा का उल्लंघन करना धर्म था, परंतु विषयानुरागी, स्वार्थी, जिद्दी, लोभी और क्रोधी मनुष्य का वैसा करना पतन के सोते में ही बहना है।

श्री गीतामृत - पदावली

प्रेषक – डॉ. रुद्रदत्त चतुर्वेदी, गोरखपुर

(गतांक से आगे)

यह मैंने बतलाया करके, ज्ञान–मार्ग का अवलम्बन।
कर्म–मार्ग अब सुनो, कटेंगे जिससे कर्मों के बन्धन।।39।।

नाश नहीं कर्मों का इसमें, नहीं तनिक विघ्नों का भय।
बड़े–बड़े भय से भी अर्जुन! रक्षा करता यह निश्चय।।40।।

जब होती एकाग्र बुद्धि, वह कर्म–अकर्म करे निश्चय।
बुद्धि चंचला शाखावाली, है अज्ञानी का परिचय।।41।।

वेदों के वचनों में भूले मूढ़, बढ़ाकर ऐसी बात।
इससे अन्य नहीं है कुछ भी, सदा कहा करते हैं तात।।42।।

कर्मों का फल जन्म–प्राप्ति है, औ ऐश्वर्य–सुखों का भोग।
स्वर्गोच्छुक हैं यही बताते, काम्य बुद्धिवाले ये लोग।।43।।

विषय–भोग में लीन जनों की, जिनका हरा गया यों ज्ञान।
कर्म–अकर्म बताने वाली, बुद्धि न कर पाती पहचान।।44।।

गुणातीत तुम बनो, पार्थ! हैं विषय वेद के ये गुण तीन।
आत्मनिष्ठ, सत्वस्थ बनो तुम, योग–क्षेम औ' द्वन्द्व–विहीन।।45।।

जल से भरी जगह में जैसे, नहीं कूप का अधिक प्रयोग।।
वेदों के ज्ञानी को उतना कहते हैं सब ब्राह्मण लोग।।46।।

कर्म मात्र के अधिकारी हो, फल का तुम्हें नहीं अधिकार।
फल के लिए कर्म मत करना, कभी न तुम रहना बेकार।।47।।

योगी बनकर कर्म करो, सब तज आसक्ति करो उद्योग।
सिद्धि-असिद्धि सदा सम जानो, समता ही को कहते योग।।48।।

सुनो धनंजय ! कर्म सदा है, बुद्धि-योग से न्यून परम।
बुद्धि-योग की शरण गहो तुम, फलाभिलाषी सदा अधम।।49।।

पाप-पुण्य में लिप्त न होते, बुद्धि-योगवाले ये लोग।
अतः योग के आश्रय में जा, कर्म-कुशलता ही है योग।।50।।

बुद्धि-योग वाले नर ज्ञानी, कर्म-फलेच्छा तज देते।
जन्म-बन्ध से छुट करके वे, पार्थ अमर पद पा लेते।।51।।

बुद्धि तुम्हारी जब हे अर्जुन! मोह पंक से होगी पार।
सुनी हुई, सुनने की बातों, में होगा निस्पृह आचार।।52।।

वेद वाक्य से चकित तुम्हारी, बुद्धि जभी निश्चय होगी।
जब समाधि में अचल रहेगी, तभी बनोगे तुम योगी।।53।।

अर्जुन उवाच

स्थितप्रज्ञ, समाधि–स्थित के लक्षण बतलाओ भगवान।
स्थित–प्रज्ञ जन कैसे बर्तें, औ उनकी है क्या पहचान।।54।।

सुस्थितप्रज्ञ उन्हें कहते, जो सभी कामनाएँ मन की–
तज देते हैं, अपने ही में, तुष्टि सदा होती जिनकी।।55।।

दुःख में जो उद्विग्न न होता, सुख की इच्छा नहीं जिसे।
क्रोध, राग, भय जिसे न होते, स्थितप्रज्ञ मुनि कहो उसे।।56।।

बुरा भला मिल जाये जो भी, अनासक्त हैं जो रहते।
हर्ष न शोक जिन्हें होता है, स्थितप्रज्ञ उन्हें कहते।।57।।

कछुआ जैसे अंग सिकोड़े, जो विषयों से मन खींचे।
दूर सदा विषयों से जो नर, स्थितप्रज्ञ उन्हें कहते।।58।।

निराहार से छुटते केवल विषय, नहीं उनका अनुराग।
ईश्वर दर्शन हो जाने पर विषय–राग भी जाता भाग।।59।।

(शेष अगले अंक में)

नारी को योग की आवश्यकता

डॉ. श्रीमती सरिता भारद्वाज,
एम.ए. (हिन्दी, संस्कृत), बी.एड., आचार्य (सांख्य योग) डी.एम.साई

(गतांक से आगे)

पाँच माह के पश्चात् जन्मकाल पर्यन्त शीतली तथा नाड़ीशोधन प्राणायाम गर्भिणी को हितकर है। इन प्राणायामों के प्रभाव से शरीर के विष तथा *Toxins* शामित रहते हैं तथा शरीर के हॉरमोन में समता आने से गर्भस्थ शिशु की सर्वांग पुष्टि होती रहती है। कफजन्य विकारों की स्थिति में सूर्यभेदी प्राणायाम भी प्रशस्त है। सभी प्राणायाम मूलबन्ध, उड्डियान बन्ध तथा जालन्धर बन्ध के सहित करने पर ही प्राणों की गति सुषुम्ना मार्ग में होकर शक्तिचालन एवं कुण्डलिनी जागरण होता है। सभी बन्ध निराहार अवस्था में ही करने चाहिए। उड्डियान बन्ध के विषय में योग शास्त्र में ऐसा उल्लेख है कि इसे खड़े होकर यारु बैठकर और लेटकर पीठ को सीधा रखकर किया जा सकता है। देखिए–

स्थित्वोपविश्य वा कुर्याच्छयित्वाऽपि यथारूचि।
अकृताहार एव स्यात् उड्डीयानक बन्धते।।

योग रहस्य

इस बन्ध के अभ्यास से यकृत, प्लीहा तथा अन्य उदरगत रोग तथा अन्दर की गांठे दूर होती हैं। प्राणों में नीचे से ऊपर के केन्द्रों की ओर आकर्षण पैदा होता है। इसे किसी योग्य योगशिक्षक से सीखकर ही करें अन्यथा गलत करने पर रोगी बन सकता है। जालन्धर बन्ध को उड्डियान बन्ध के बाद करने से अधिक लाभ होता है। उचित ढंग से उड्डियान बन्ध का अभ्यास करते रहने से नाड़ी चक्रों की शुद्धि, दृढ़ता तथा शक्ति वृद्धि होती है। अपान वायु के प्रकुपित होने से होने वाले रोगों का विनाश उड्डियान बन्ध से हो जाता है। यकृत, प्लीहा तथा Pancreas की सभी अशुद्धियाँ और मल सूख जाते हैं, जठराग्नि बढ़ती है और मूत्र रोग नष्ट हो जाते हैं, रक्त भी शुद्ध हो जाता है। गर्भावस्था से पूर्व होने वाले रजोरोग (मासिक धर्म संबंधी बीमारी) दूर हो जाते हैं। शरीर में आलस का नाम नहीं रहता। परिमित मात्रा में पौष्टिक सतोगुणी आहार सेवन करते रहने से गर्भस्थ शिशु में योग की शक्तियाँ अंकुरित होने लगती हैं। जालन्धर बन्ध का प्रभाव तो अद्भुत है। 72 हजार नाड़ियों में प्रवाहित होने वाला अमृत तत्व तालु के ऊपरी भाग कण्ठ के ऊपर से नियंत्रित होकर संपूर्ण कोषिकाओं और शिराओं में समान रूप से व्याप्त होता जाता है जिससे दीर्घजीवन और इन्द्रियाँ शक्तिशाली बन जाती हैं। इस बन्ध के अभ्यास से पुरुष ऊर्ध्वरेता बनते हैं और स्त्रियों की रजोशुद्धि हो जाती है जिससे प्रजनन अंगों से संबंधित विकार नष्ट हो जाते हैं। इतना ही नहीं जालन्धर बन्ध के अभ्यास से शरीर की कोई भी वायु कुपित नहीं होती, हृदय रोग ठीक हो जाते हैं, नेत्र, कर्ण, नासिका तथा

गले का सूखना (त्रिशा रोग) समूल नष्ट हो जाते हैं। देखिए योगीश्वरों का कथन है–

नहि कुप्यति वायुश्च हृद्रोगश्च प्रशाम्यति।
दृष्टिदोषः कर्णबाधा नासा रोग तथा तृषा।
समूलतो विनश्यन्ति बन्धात् जालन्धरात्सदा।।

(योग रहस्य)

इस बन्ध का अभ्यास केवल सीधे बैठकर ही करना उचित है। प्रजननेन्द्रिय के अंगों की शिथिलता दूर करने के लिए विविध प्रकार के कोणासन उपयोगी हैं जैसे– त्रिकोणासन, पार्श्वकोणासन, उपविष्ट कोणासन, सुप्त कोणासन, विपरीत कोणासन एवं ऊर्ध्व कोणासन। मेरुदण्ड की दृढ़ता तथा सन्धि स्थानों की मजबूती के लिए कपोतासन और उष्ट्रासन हितकर है। गर्भिणी नारियों की सभी प्रकार की दुर्बलता दूर करने के लिए महायोगी याज्ञवल्क्य की अर्धांगिनी गार्गी ने द्विपाद आसन को श्रेयस्कर माना है। यह आसन उन्मुख आसन का पूरक कहलाता है। इस आसन में पीठ के बल लेटकर घुटनों को मोड़कर पीठ और पेट को ऊपर उठाकर कन्धे और सिर के सहारे जमीन पर रुक कर दोनों हाथों से पैरों की ऐड़ियाँ पकड़ते हैं।

प्रजनन के पश्चात् शिशु के लालन पालन में माता का बाहुबल बच्चे को बार–बार उठाकर इधर से उधर ले जाने के लिए महत्वपूर्ण है। अतः दोनों भुजाओं को शक्तिशाली बनाए रखने के लिए पद्मासन में बैठकर रेचकर पूरक और कुम्भक प्राणायाम पूर्वक दोनों हाथों को ऊपर की ओर खींचकर स्थिर स्थिति में रहें। फिर दोनों बाहों को दायीं–बायीं ओर खींचकर रखें। इस प्रकार के अभ्यास से थोड़े समय में गर्भिणी की दोनों भुजाएं बलिष्ट हो जाती हैं। खड़े होकर भी इस प्रक्रिया को दिन में 2 बार दोहराया जा सकता है। इसके अतिरिक्त महामुद्रा, बद्धकोणासन, ताड़ासन, उत्तानासन को छोड़कर अन्य सभी भेदों और उपांगों के साथ करते रहने से गर्भस्थ शिशु पूर्ण योगी बन सकता है। योगी और योगिनी संतान को जन्म देने के लिए पति–प्रिया, गुरुभक्ति युक्त आस्तिक तथा योगाभ्यास परायण होना आवश्यक है। यदि वे अहिल्या, गार्गी और चुड़ाला आदि योगिनियों की भाँति क्रियायोग का अभ्यास करने में तत्पर रहें तो उनकी कोख से दिव्य योगभ्रष्ट आत्माओं का जन्म होने में कोई सन्देह नहीं होगा। योग साधना के साथ–साथ हित भुक्, ऋतुभुक् और मिलभुक् का पालन करके प्राणों की समता को सदा बना के रहना चाहिए। प्राणों की समता, थकावट, निद्रा, आलस्य, भय एवं क्रोध से नष्ट होती रहती है। अतः अपनी जीवनचर्या को इन नकारात्मक शक्तियों से बचाकर परम श्रेय के मार्ग पर चलते हुए पराक्रमी संतान को जन्म देकर अपने मातृत्व को धन्य बनाएँ।

■■■

सर्व समर्थ मेरे सद्गुरुदेव

राजेश कुमार सिंह, बलिया

पहला प्रसंग

दुनिया में उजाला है तुमसे, किस शै में तुम्हारा नूर नहीं।
तुम दूर सही हमसे लेकिन, जलवे तो नजर से दूर नहीं।।

सन् 1978–79 की बात है, लगभग एक वर्ष हुआ होगा आचार्य किशन दत्त शर्मा जी को सिद्ध सवाई आश्रम में अनवरत रहते हुए। शाम का समय एक बड़ी गुरुबहन, आचार्य जी को देखकर बोली, किशन दत्त, तुम्हारे पिताजी की उम्र क्या थी? आचार्य जी अवाक् हो सोचने लगे, ये पूछने का मतलब क्या है? क्या मेरे पिताजी की इह लीला समाप्त हो गई? तब तक सद्गुरुदेव जी बोले लल्ला किशन दत्त इधर आओ, उन्हें एकान्त में ले जाकर प्यार से समझाते हुए बोले:

सद्गुरुदेव जी – लल्ला तुम्हारे पिताजी शरीर पूरा कर लिये हैं। तुम्हें अपने घर जाना होगा।

(तरुण ब्रह्मचारी आचार्य किशन दत्त शर्मा सद्गुरुदेव जी के सामने खड़े विनीत भाव से पूछते हैं)

आचार्य जी – क्यों जाना होगा? अभी एक वर्ष हुए होंगे आपके श्री चरणों में आये हुए, फिर मैं क्यों जाऊँ?

सद्गुरुदेव जी – लल्ला पिता की अन्त्येष्टि में जाना चाहिए।

आचार्य जी– मेरे पिता जी का शरीर कैसे पूरा हो गया?

सद्गुरुदेव जी – लल्ला ये प्रभु की माया है, जिसे जब तक दुनिया में रखना होता है, वो रखते हैं।

आचार्य जी– आपसे बड़ा कौन है? आपके रहते हुए मेरी इस स्थिति में पिताजी इस जहां से नहीं जा सकते।

सद्गुरुदेव जी– इसमें मैं क्या कर सकता हूँ?

आचार्य जी– आप क्या नहीं कर सकते?, आपके हाथ में क्या नहीं है। मैं अपने पिताजी के विषय में यह नहीं सुनना चाहता कि वो नहीं हैं।

सद्गुरुदेव जी– अच्छा लल्ला, पहले तुम घर जाओ।

आचार्य जी– घर तो जाऊँगा लेकिन वहाँ पर पिताजी मृत नहीं जीवित मिलें और ये

घटना किसी को याद न रहे।

सद्गुरुदेव जी – अच्छा लल्ला, तुम जाओ, जैसा हो खबर करना।

आचार्य किशन दत्त शर्मा जी श्री सद्गुरुदेव जी को साष्टांग प्रणाम कर तथा मनवांछित आशीर्वाद लेकर अपने घर हरियाणा के करनाल जिले के वृजपुर गाँव को प्रस्थान कर गये। करनाल शहर में ही अपने परिचितों से घर का समाचार पूछते हैं, उत्तर संतोषजनक मिलता है अर्थात् इस तरह की कोई घटना हुई ही नहीं थी। आचार्य जी के पिताजी पंडित रामभज शर्मा जी आज भी प्रभु कृपा से जीवित हैं। शायद उनको भी इसकी जानकारी नहीं है कि उनके ब्रह्मचारी पुत्र ने यमराज के घर से अपने सद्गुरुदेव जी की कृपा से उनको वापस लाया है।

कहा जाता है कि जब भगवान श्रीकृष्ण का जन्म हुआ और वासुदेव जी बन्दीगृह से उन्हें गोकुल पहुंचाकर योग माया (कन्या) को लेकर आये तो वो कन्या चतुर्भुजा दुर्गा रूप में सामने प्रगट हुई और श्रीकृष्ण के अवतरण का कारण वासुदेव और देवकी को बताई। अंत में वो बोली कि मैं एक माया का पर्दा तुम्हारे ऊपर डाल देती हूँ जिससे तुम्हें ये सारी घटनायें याद नहीं रहेंगी। अनहोनी को होनी करने वाले श्री सद्गुरुदेव जी ने भी उन गाँव वालों के साथ वही कार्य किये अर्थात् माया का पर्दा डाल दिये जिससे उनको कुछ याद नहीं रहा।

रामचरित मानस में वर्णित है–

नर तनु धरहि संत सुर काजा, कहहिं करिस जस प्राकृत राजा।

<u>दूसरा प्रसंग</u>

सिद्ध सवांई आश्रम के नलकूप वाले खेत में सरसों के भूस और लकड़ियाँ रखी हुई थीं; आचार्य किशन दत्त शर्मा जी जो अधिकांश समय आश्रम की सेवा में ही यापन करते हैं, सोचा कि इन खर–पतवारों से खेत को खाली कर दी जाए तो अच्छा, इसलिए उसके ढेर में वो आग लगा दिये। जब खरपतवार जलने लगा तो आचार्य जी के मन ने प्रश्न किया? सद्गुरुदेव जी यहाँ आकर देख लेंगे तो निश्चित रूप से नाराज होंगे, क्योंकि हो सकता है इसके अंदर जीव–जन्तु भी हो। उस वक्त आचार्य जी के उस कार्य के सहयोगी के रूप में श्री रामसहाय नाई थे। आचार्य जी के मन में एक युक्ति आई– थोड़ी लकड़ी जिसमें आग पकड़ ली थी राम सहाय को हाथ में देकर बोले– इससे दूसरे तरफ आग लगा दो। उसी वक्त सद्गुरुदेव जी नलकूप के पास आते हुए दिखाई दिये। हाथ में अपनी छड़ी लिए आचार्य जी से बोले लल्ला! इसमें आग किसने लगाई? आचार्य जी बालक स्वभाव अपने को बचाने की कोशिश करते हुए उस जगनियंता से बोले, महाराज जी! रामसहाय ने। सद्गुरुदेव जी बोले इसमें जीवजन्तु भी हो सकते हैं आग नहीं लगानी चाहिए थी। खैर, कहकर लौट गये, मगर आचार्य जी के मन में एक प्रश्न पैदा कर दिये कि अभी सद्गुरुदेव जी गुफा के पास लगभग 500 गुरुभाई बहनों के बीच कुर्सी पर बैठकर उपदेश दे रहे थे, वहा से उन लोगों के बीच से उठकर यहाँ अचानक कैसे

चले आये? कहीं गुरुजी का यह दूसरा शरीर तो नहीं? महाराज जी का वहाँ से लौटने में दो मिनट भी नहीं हुआ होगा, आचार्य जी दौड़कर गौशाला के रास्ते देखने आये कि सच्चाई क्या है? महाराज जी कुर्सी पर बैठे भक्तों के बीच पूर्व स्थिति में उपदेश दे रहे थे, आचार्य जी सद्गुरुदेव जी को साष्टांग प्रणाम किए, उस वक्त महाराज जी भक्तों को बता रहे थे–

अचिन्त्य शक्तिमान योगी, नाना रूपाणि धारयेत्,
संहेरच्च पुनश्चलानि, स्वेच्छया जितेन्द्रिय।।

अर्थात् अलौकिक शक्ति सम्पन्न योगी अपनी योग शक्ति से, निर्माणकाय विधि से नाना रूपों को धारण करते हैं, ऐसे जितेन्द्रिय योगी अपने उन रूपों को पुनः अपनी इच्छा से समेट लेते हैं।

भक्तों का शंका समाधान भी सद्गुरुदेव जी अपने वचनों के माध्यम से कर दिया करते हैं। (यहाँ पर मैं कर दिया करते थे नहीं लिख सकता क्योंकि अब भी हमारे सामने जब प्रश्न उत्पन्न होता है तो किसी न किसी विधि से सद्गुरुदेव जी उसका निराकरण कर देते हैं, मेरी नजर में आज भी वो उसी रूप में विद्यमान हैं)।

रामचरित मानस में वर्णित है कि धरती पर जब राक्षसों का अत्याचार बढ़ने लगा तो धरती रोती हुई देवताओं की सभा में गई। (धरती पर भार पाप से बढ़ता है) देवतागणों ने धरती के दुखड़ा को सुना और विचार करने लगे कि भगवान विष्णु के पास इस समस्या को रखा जाए, धरती के भारत को वही मिटा सकते हैं। किसी ने कहा वो क्षीर सागर में शयन कर रहे होंगे तो किसी ने कहा वो बैकुण्ठ में होंगे। उस सभा में भगवान सदा शिव भोले नाथ भी थे, समय पाकर देवगणों से बोले:–

हरि व्यापक सर्वत्र समाना, प्रेम ते प्रगट होंहि मैं जाना,
देशकाल दिसि विदिसिहु मांहीं, कहहुँ सों कहां जहां प्रभु नाहीं,
अग जगमय सब रहित विरागी, प्रेम ते प्रभु प्रगटई जिमि आगी।

अर्थात् प्रभु कण–कण में व्याप्त हैं आप उन्हें पुकार कर तो देखें, खम्भे बहुत हैं, प्रहलाद भक्त जैसी इच्छाशक्ति तो हो, भगवान नरसिंह अवश्य प्रकट हो जायेंगे और हम सब की रक्षा करेंगे। सद्गुरुदेव जी के कृपालीलाओं का वर्णन मैं क्या कर पाऊँगा,

तेरी वन्दगी की लज्जत, कोई मेरे दिल से पूछे,
तुझे याद करके रोना, यही मेरी वन्दगी है,
तेरी याद मेरी उल्फत, तेरा गम मेरी मुसर्रत,
तुझे कैसे भूल जाऊँ, तू हबीब–ए–जिन्दगी है।

■■■

एक प्रसिद्ध महात्मा के उद्‌गार

लोग मेरी पूजा करने को बहुत उत्सुक रहते हैं; पर जब मैं उनसे उसकी पूजा करने को कहता हूँ, जिसकी पूजा मैं भी करता हूँ, तो वे मेरी बातों की उपेक्षा करते हैं! मुझे यह देखकर खेद होता है कि वे किसी सच्चे महात्मा को प्राप्त करने के अधिकारी नहीं। धूर्तों द्वारा वे ठगे जा सकते हैं, किंतु किसी भी सदाशय के हितकारी वचन उनके हृदय तक नहीं पहुँचते।

स्वार्थ ने संसार को अन्धा कर दिया है। लोग मुझे शरीर से निरपेक्ष और समदर्शी कहते हैं। आश्चर्य तो यह है कि मुख से ऐसा कहते समय भी वे मेरे द्वारा अपना कुछ लाभ होने की इसलिए आशा रखते हैं; क्योंकि वे मेरे निकट सम्पर्क में रहते और मेरी शारीरिक सेवाओं में तत्परता से लगे रहते हैं।

मैं स्पष्ट देखता हूँ कि लोग मुझे झूठा और महात्मा एक साथ समझते हैं! जब मैं उनसे कहता हूँ 'मुझमें कोई सिद्धि नहीं, मेरी चरणधूलि लेने या पूजा करने से कोई लाभ नहीं, मैं भी तुम्हारी भाँति साधारण पुरुष हूँ' तो वे इन शब्दों को हँसी में उड़ा जाते हैं। इन पर वे विश्वास नहीं करते। इसके विरुद्ध मुझसे ऐसी आशा रखते हैं, जिसे मैंने स्पष्ट अस्वीकार कर दिया है।

श्रद्धालु कहे जाने वालों की भीड़ चाहती है कि मैं दिन-रात उनके सामने बोला करूँ, उनके छटपटांग पदार्थ खाता रहूँ, इतने पर भी स्वस्थ रहूँ! वे साधन करने का अवकाश नहीं देना चाहते! परंतु साधननिष्ठ से होने वाले लाभ को चाहते हैं। अच्छे भोजन, अच्छे वस्त्र में रखकर वे मुझे त्यागी कहते हैं। मैं सोचता हूँ कि ये मेरा उपहास कर रहे हैं।

स्त्रियों ने तो और भी धूम मचा रखा है। वे चाहती हैं कि एकान्त में मैं उनकी पूजा ग्रहण करूँ, उन्हें उपदेश दूँ। उनके अभिभावक भी यही चाहते हैं। साथ ही सब चाहते हैं कि मैं निर्विकार रहूँ। एक कलियुग के प्राणी से वह आशा की जाती है जो पराशर, विश्वामित्र, श्रृंगीऋषि प्रभृति के लिए भी विफल रही है।

जब तक ऐसी परिस्थिति है, धूर्तों से समाज को नहीं बचाया जा सकता। घृणित काण्डों का होना बन्द नहीं होगा। साधक एवं महात्माओं को भगवान् ही बचायें तो बचें। प्रभु समाज को सुबुद्धि दें। वह अपने एवं साधकों के पतन के इस मार्ग से बचे।

SIDDHYOG Postal Regd. No.: Ag. 19/2009-11

JULY 2010

मीडिया पोस्ट

हृदय स्पर्शी सेवा

उत्पाद (ब्राण्ड) को बाजार में स्थापित करने के लिए एक अनोखी एवं प्रभावशाली योजना –

<u>निम्न माध्यमों से विज्ञापन की सुविधा</u>

1. डाक वस्तुओं पर स्पेस आच्छन (स्थाई चलता का विज्ञापन
2. लैटर बक्सों पर स्थाई का प्रायोजन (स्पोंसरशिप)
3. मेल वाहनों पर स्थाई का प्रायोजन (स्पोंसरशिप) दर : रु. 1000 प्रति पैनल प्रतिमाह पेंटिंग खर्च रु. 500.00 प्रति पैनल
4. डाकघर परिसर में होर्डिंग लगाकर विज्ञापन दर रु. 5.50 प्रति वर्ग फीट प्रति माह
5. डाकघर के अन्दर या बाहर स्पोंसरड वीडं लबबा पोस्टर लगाकर विज्ञापन दर रु. 100/- प्रति वर्ग फुट प्रति माह
6. डाकघर के पार्क पर स्टाम्प कैमिलेहान की डाई लगाकर विज्ञापन दर रु 100/- प्रति डाई प्रतिदिन डाई का मूल्य रु 400/-
7. मेघदूत पोस्ट कार्ड के माध्यम से विज्ञापन अर्थात् पोस्ट कार्ड के आधे भाग पर उत्पादों का विज्ञापन , दर रु. 2/- प्रति पोस्ट कार्ड। मेघदूत पोस्ट कार्ड का विक्रय मूल्य केवल 25 पैसे मात्र।

प्रेषण कार्यालय :

सिद्धयोग

योग सिद्धान्तों का प्रतिपादक एवं सर्वाधिक हिन्दी मासिक

श्री सिद्धयोग योग प्रशिक्षण केन्द्र

सैंवाई (एटमादपुर) आगरा (उ.प्र.)

PRINTED MATTER BOOK-POST

श्री/श्रीमती _____

_____

_____

□□□□□□

संरक्षक – योगयोगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहन जी महाराज। मुद्रक एवं प्रकाशक डॉ. दासलाल शर्मा के लिए राष्ट्रीय ब्लॉक एवं प्रिंटिंग वर्क्स, आगरा-3 से मुद्रित एवं श्री योग प्रशिक्षण केन्द्र, सैंवाई (एटमादपुर) आगरा से प्रकाशित। आर.एन.आई. नं. UPHIN/2004/14566 सम्पादक : आचार्य ब. (डॉ.) दासलाल शर्मा